CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कविनृपति रामभट्ट प्रणीत

गीतगिरीशम्

अनुवादक

डॉ० प्रभातशास्त्री डी० लिट्०

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
१२ सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डॉ० प्रभात शास्त्री

डी० लिट्०,

जन्मतिथि : ज्येष्ठ कृष्ण, द्वितीया, संवत् १९७५ वि० (२७ मई, सन् १९१८ ई०)

जन्मस्थान : दारागंज, प्रयाग

गवर्नमेण्ट संस्कृत (क्वीन्स) कालेज बनारस (वर्तमान सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी) से प्रथम श्रेणी में साहित्याचार्य एवं वाचस्पति (डी० लिट्०)। परम्परागत रीति से प्रकाण्ड पण्डितों की छत्रच्छाया में संस्कृत-ज्ञान प्राप्त। ब्रह्मलीन श्रीजगद्गुरु ऊर्ध्वाम्नाय काशी सुमेरु पीठाधिपति श्री महेश्वरानन्द सरस्वती से साहित्यशास्त्र का गहन अध्ययन।

लुप्तप्राय संस्कृत गीत-काव्यों के सम्पादन-प्रकाशन में सर्वदा निरत। अनेक विश्वविद्यालयों में आप द्वारा सम्पादित गीत-काव्यों पर शोध-कार्य सम्पन्न। विगत १५ वर्षों से स्तरीय संस्कृत त्रैमासिक पत्रिका 'संगमनी' का सम्पादन। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी की शिष्टपरिषद्, कार्यकारिणी एवं चयनसमिति आदि के पूर्व सदस्य। प्रायः तीन हजार पृष्ठों में संस्कृत सामग्री सम्पादित।

सम्प्रति हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के प्रधानमन्त्री। हिन्दी-आन्दोलन से गत चार दशकों से सम्बद्ध। भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण, आवास, रक्षा, शिक्षा, रेल, वित्त एवं शहरी विकास आदि मन्त्रालयों की हिन्दी-सलाहकार समितियों के सदस्य।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

4.1

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गीतगिरीशम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

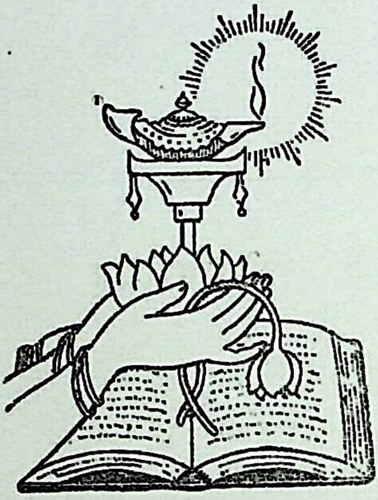

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कविनृपतिरामभट्टप्रणीत

गीतगिरीशम्

आदरणीय
श्री काशीनाथ वात्स्यायन को
सादर भेंट
प्रभात
३.१०.८७

अनुवादक एवं सम्पादक
डॉ० प्रभात शास्त्री
डी० लिट्०

शक १९०९ : सन् १९८७
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशनवर्ष	सन् १९८७ ई०
संस्करण	प्रथम
मूल्य	२५.०० रुपये
प्रतियाँ	५००
प्रकाशक	डॉ० प्रभात मिश्र शास्त्री
	प्रधानमन्त्री
	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
	१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद
मुद्रक	सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

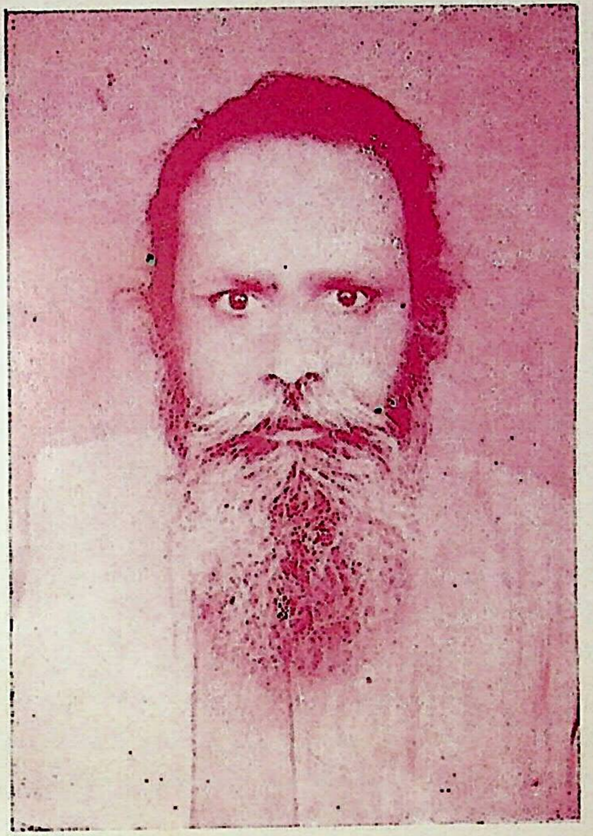

महन्त
श्री १०८ ईश्वर भारती को
सादर समर्पित

प्रभात शास्त्री

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशकीय

अन्तःस्थितो रसः पुष्टो बहिश्चेन्न विनिर्गतः।
तदा पूर्णो नैव भवेदिति वाङ्‌निर्गमस्तथा॥

'अन्तःस्थित रस यदि बाहर अभिव्यक्त न हो, तो पूर्ण नहीं हो सकता। इसलिए गान के रूप में हृदय के रस की अभिव्यक्ति आवश्यक है।'

(रासपंचाध्यायी, सुबोधिनी कारिका)

मानव के राग-बोध का रसात्मक रूप गीत बनकर आस्वाद्य एवं आह्लाद हो जाता है। भारतीय मनीषा ने मानव के रागानुराग के लालित्य पर आधारित काव्यों का सर्जन करके इस परम्परा को मुक्तक एवं प्रबन्ध विधा के अन्तर्गत सम्पुष्ट किया है। काव्य की यह समृद्ध परम्परा वैदिक ऋचाओं से होती हुई प्राकृत गीतियों, थेर गाथा, थेरी गाथा, वेणुगीत, गोपीगीत एवं चर्यापदों में प्रवहमान हुई और इसका सर्वोत्कृष्ट रूप महाकवि जयदेव के गीतगोविन्द में उद्‌भासित है। गीत की ललित प्रबन्धात्मक संरचना का जो रूप गीतगोविन्द में प्रकट हुआ, उस परम्परा में अनेक कृतियाँ सर्जित हैं; जिनमें कविनृपति रामभट्ट की कृति 'गीतगिरीशम्' का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

डॉ० प्रभात शास्त्री विगत अनेक दशकों से संस्कृत के गीति-काव्यों के संग्रह, सम्पादन एवं अनुवाद का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। उनके प्रयास से अनेक गीति-काव्य प्रकाशित हुए हैं, जिन पर कई विश्वविद्यालयों में शोधकार्य सम्पन्न हो रहे हैं। गीति-काव्य वैयक्तिक राग-बोध, संगीतात्मकता एवं तरलता के कारण काव्यास्वादकों के मध्य प्रिय रहे हैं। गीत के संबंध में कहा गया है कि

शब्दो हि धूमवल्लोके बाह्याभ्यन्तरयोगतः।
विराजते विनिर्गच्छन् तारतम्यं न गच्छति॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'वाह्याभ्यन्तर के योग से शब्द-लय और भाव के योग से, गायक के हृदय से निःसृत होकर गीत अत्यन्त मोहक वन जाता है और सुन्दर से सुन्दरतर हो जाता है।'

(रासपंचाध्यायी, सुवोधिनी कारिका)

अतएव साहित्यसमिति के निश्चयानुसार रामकवि प्रणीत 'गीतगिरीशम्' का यह सचित्र सानुवाद संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। 'गीत-गिरीशम्' को इस रूप में प्रस्तुत करने में आचार्य तारिणीश झा का निरन्तर सहयोग प्राप्त होता रहा। उनके सहयोग के लिए हम आभारी हैं। साथ ही इसकी साज-सज्जा आदि रूपायित करने में श्री हरिमोहन मालवीय 'साहित्य विभागाध्यक्ष' का प्रयत्न स्तुत्य है।

विश्वास है, इस अनुवाद के द्वारा रसिक भावक गीतरस का आस्वाद पा सकेंगे।

संस्कृत-दिवस (रक्षावन्धन)
संवत् २०४४ वि०

प्रेमनारायण शुक्ल
साहित्यमन्त्री

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
पुरोवाक्		१-१३
गीतगिरीशम्		१-९१
प्रथम सर्ग	वसन्त-विलास	१
द्वितीय सर्ग	मानिनी मनोरथ	१४
तृतीय सर्ग	उत्कण्ठित शिव	२०
चतुर्थ सर्ग	गौरी का अत्यन्त अनुराग	२५
पञ्चम सर्ग	सखी की गुह्य वार्ता	३१
षष्ठ सर्ग	दुर्गा की अवस्था का निर्देश	४६
सप्तम सर्ग	प्रतिनायिका का रतिवर्णन	५०
अष्टम सर्ग	शिव को उलाहना	६०
नवम सर्ग	पार्वती को प्रवृत्त करना	६४
दशम सर्ग	सरस-शंकर	६८
एकादश सर्ग	शंकर का दर्शन	७४
द्वादश सर्ग	प्रसन्न शिव	८३
श्लोकों की अनुक्रमणिका		९३
गीत-सूची		९८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुरोवाक्

संस्कृतभाषा का प्राचीन वाङ्मय जहाँ काव्य, नाटक, व्याकरण, साहित्यालोचन तथा उत्कृष्ट कोटि के दार्शनिक ग्रन्थों से अत्यन्त सुसमृद्ध है, वहीं ऐतिहासिक तथ्यों से परिपूर्ण महापुरुषों की जीवनी, आत्म-कथा, यात्रा-साहित्य आदि विषयों में दुर्बल है।

इसका परिणाम यह है कि किसी भी महापुरुष अथवा लेखक के जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी लिखने के लिए केवल अनुमान-प्रमाण का सहारा लेना पड़ता है। यही स्थिति प्रस्तुत कृति के लेखक रामभट्ट की है।

कवि ने पुस्तक के अन्त में अपना संक्षिप्त परिचय देते हुए पिता का नाम श्रीनाथ भट्ट और अपना नाम रामभट्ट बताया है।[1]

इनका दूसरा नाम रामजित्भट्ट[2] भी है। इसकी जानकारी 'गीतगिरीश' तथा इन्हीं के

---

१. आसीदसीममहिमा स हिमाऽवदातमूर्तेर्भवस्य चरणाऽर्चनयाप्तकीर्तिः।
श्रीनाथभट्ट इति तत्तनयेन, रामनाम्नाऽद्भुतं व्यरचि गीतगिरीशमेतत्॥
—गीतगिरीश, सर्ग १२, श्लोक १२।

२. वचनार्णवमालोक्य, मुनीनां मितवादिनी। स्वविभागविवेकस्य, टीका रामजिता कृता॥

पुष्करिणी मितवादिन्येषा, पार्श्वे मिताक्षरा सिन्धोः। सज्जनमनोमरालाः खेलन्त्वस्यान्तु निःशङ्कम्॥

——इति श्री भट्टरामजिद्विरचितभागविवेकटीका मितवादिनी समाप्ता।—इण्डिया आफि० लन्दन, केटलाग।५। पृष्ठ ४६४।

तथा——रामजित्कविवर्णितं कलिकल्मषं विनिहन्ति। गीतमेतदधीतमाशु लसद्यशोऽपि तनोति॥

—गीतगिरीश, सर्ग ३, श्लोक ८।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वारा लिखित धर्मशास्त्र-सम्बन्धी पुस्तक 'धनभागविवेक' की स्वरचित टीका के अन्तिम श्लोक से होती है।

इससे अधिक संस्कृत के अन्य कवियों के समान इस कवि ने भी अपने देश, काल आदि के विषय में कुछ नहीं लिखा है।

संस्कृतभाषा में 'रामभट्ट' नाम के सोलह ग्रन्थकार हुए हैं।[१] प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् ऑफ्रेड ने सोलह ग्रंथकारों की चर्चा 'केटलागस केटलागारम्' नामक ग्रन्थ में की है। इनके विषय में इन्होंने अत्यन्त संक्षेप में इतना ही लिखा है—"श्रीनाथ के पुत्र 'गीतगिरीश' और 'धनभागविवेक' के कर्ता।'

केवल अनुमान के आधार पर इनका जन्म-काल ईसवीय सन् सोलहवीं शताब्दी का पूर्वभाग माना जा सकता है।

रायल एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता में 'गीतगिरीशम्' की दो प्रतियाँ हैं, जिनमें से एक का प्रतिलिपि-काल संवत् १७५९ है।[२] इसे ईसवीय सन् में परिणत करने पर १७०२ आता है।

प्राचीनकाल में आजकल के समान मुद्रण और यातायात की व्यवस्था सुलभ नहीं थी। इस कारण किसी ग्रन्थ के प्रचार-प्रसार और ख्याति प्राप्त करने में प्रायः सौ वर्ष लग जाते होंगे। इस तर्क के आधार पर इस ग्रन्थ का रचनाकाल सोलहवीं शताब्दी का पूर्वभाग मानना अनुचित न होगा। ग्रन्थ की लिपि से भी लेखक का यह काल निश्चित करना न्यायसंगत है। इस

---

१. १ रामभट्ट, नीलकण्ठ के पिता, कृति, काशिकातिलक, २. रामभट्ट (राघव ने उल्लेख किया है।) ३. भट्टराम, कृति, उज्जीवितमदालसा-नाटक, ४. रामभट्ट, कृति, कौतुकलीलावती, ५. रामभट्ट, कृति, त्रिंशच्छ्लोक्यार्थ, ६. रामभट्ट, कृति, दक्षिणकालिकानित्यपूजापद्धति, मातंगिनीपद्धति, ७. रामभट्ट, कृति, ब्रह्मामृत, ८. रामभट्ट, कृति, प्रक्रियाकौमुदी-टीका, ९. रामभट्ट, कृति, मदालसानाटकम्, १०. रामभट्ट, कृति, रामकल्पद्रुम, ११. रामभट्ट, कृति, रामविक्रमचन्द्रिका, १२. रामभट्ट, कृति, संक्षिप्त होमप्रकार, १३. रामभट्ट, कृति, सापिण्ड्यनिर्णय, १४. रामभट्ट, कृति, सारस्वतप्रक्रियाटीका, १५. रामभट्ट, कृति, भूपसिंहदानरत्नाकर, और १६. रामभट्ट, कृति, गीतगिरीशम् (श्रीनाथ के पुत्र) (पृष्ठ ५०५ तथा ५०७)।

२. देखिए—संवत् १७५९ वर्षे श्रा० वदि १३ शनौ श्री०त्रं गोपालजी गणेश सुतेन लिखितं स्वपठनार्थम्।—रायल एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता की सूची, पृष्ठ १८१।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi.

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग्रन्थ का विवरण देते हुए महामहोपाध्याय स्वर्गीय श्री हरप्रसाद शास्त्री जी ने इसकी लिपि के लिए पुरानी लिपि (ओल्डनागर) लिखा है।[1]

नाम के साथ भट्ट शब्द के प्रयोग से यह निश्चित है कि ये जाति के गुजराती अथवा महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। प्रायः इन्हीं प्रदेशों के ब्राह्मण अपने नाम के साथ भट्ट उपाधि लगाते हैं। इन्होंने धर्मशास्त्र-सम्बन्धी 'धनभागविवेक' ग्रन्थ की रचना की है और 'गीतगिरीशम्' में गणेश की स्तुति में एक अष्टपदी लिखी है—इससे मेरी धारणा है कि रामभट्ट महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। यह इसलिए कि मुगलकाल में एतद्देशीय ब्राह्मणों द्वारा धर्मशास्त्र ग्रन्थ लिखने की परम्परा चल गयी थी और इसी प्रदेश में प्राचीनकाल में गणेशोपासक सम्प्रदाय था और आज भी है।

इस गीतकाव्य की आत्मारामकृत एक टीका भी है[2] जिसकी चर्चा पण्डित परिवार की घरेलू पुस्तकों की सूची में है। मैंने बहुत प्रयास किया पर यह टीका मुझे देखने को नहीं मिली। इससे ज्ञात होता है कि जयदेव के 'गीतगोविन्द' के समान इस गीतकाव्य की भी पण्डित समाज में पठन-पाठन की ओर लोकप्रियता थी। लोकप्रियता के विना किसी ग्रन्थ की टीका लिखने की परम्परा प्राचीनकाल में अपने यहाँ नहीं थी। बहुप्रचलित तथा विद्वत्-समाज में समादृत ग्रन्थ पर ही प्रायः टीकाकार टीका करते हैं।

गै धातु से भाव में क्त प्रत्यय करने से गीत शब्द बनता है—(गीयते इति गीतम्)।[3] अमरकोश के रचयिता ने गीत और गान शब्द को समानार्थक माना है। भट्ट श्रीहलायुध ने भी 'अभिधानरत्नमाला' में गीत और गान शब्द को पर्याय स्वीकार किया है।[4] चिरकाल से आज तक यह शब्द अपठित साधारण व्यक्ति से लेकर साहित्य के प्रकाण्ड पंडितों द्वारा भी

---

१. कण्ट्रीमेड पेपर, ५ = ३½ इञ्चेज, फोलियो १७ (बाई काउण्टिंग), विदाउट बिगिनिंग, लाइन्स ११-१८ आन ए पेज। कैरेक्टर, ओल्ड नागर। अपियरेन्स डिसकलर्ड। डेट शक० १७५९।

२. देखिये—केटलाग आफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स प्राइवेट लाइब्रेरीज आफ दि नार्थवेस्ट प्राविन्सेज पार्ट १ (सन् १८७४ में बनारस से मेडिकल-हाल प्रेस में मुद्रित), पृष्ठ १६।

३. गीतं गानमिमे समे—अमरकोष। (प्रथम काण्ड) श्लोक २५।

४. गीतं गानमिति प्रोक्तम्—अभिधानरत्नमाला, प्रथमकाण्ड श्लोक ९३।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गान के अर्थ में निरन्तर प्रयुक्त होता चला आ रहा है।[१] कालिदास आदि महाकवियों ने भी गीत शब्द का प्रयोग गान के अर्थ में किया है। इसी शब्दमें सम् उपसर्ग लगाकर संगीत शब्द बना है। गीत और संगीत शब्द के अर्थ में भेद है, वाद्य और नृत्य के साथ गीत को संगीत कहते हैं—(गीतं वाद्यं च नृत्यं च त्रयं संगीतमुच्यते)।

आचार्य वात्स्यायन ने गीत को[२] चौंसठ कलाओं में स्थान दिया है, भारतीय इतिहास के आरम्भ और मध्यकाल में नागरिकों की गोष्ठी और परिषदों में संगीत, नृत्यकला तथा काव्यचर्चा सुरुचि के साथ की जाती थी। वात्स्यायन के 'कामसूत्र', दण्डी के 'दशकुमारचरित', बाणभट्ट के 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' में इसका स्पष्ट उल्लेख है। वस्तुतः संगीत नागरिक जीवनविलास का एक अंग ही था। इसके ज्ञान के बिना मानव शिष्ट और सुसंस्कृत समाज में आदर और सम्मान का अधिकारी नहीं समझा जाता था। यही नहीं, भर्तृहरि ने इसके न जाननेवालों को पूँछ और सींग से रहित पशु कहा है।[३]

---

१. आर्ये, साधु गीतम्। तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः। अभिज्ञानशाकुन्तल —प्रथमांक, प्रस्तावना।

२. देखिए—गीतम् वाद्यम्, नृत्यम्, आलेख्यम्, विशेषकच्छेद्यम्, तण्डुलसुमावलिविकाराः, पुष्पास्तरणम्, दशनवसनाङ्गरागः, मणिभूमिकाकर्म, शयनरचनम्, उदकवाद्यम्, उदकाघातः, चित्राश्चयोगाः, माल्यग्रथनविकल्पाः, शेखरकापीडयोजनम्, नेपथ्यप्रयोगाः, कर्णपत्रभंगाः, गन्धयुक्तिः, माल्यग्रन्थयुक्तिः भूषणयोजनम्, ऐन्द्रजालाः, कौचुमाराश्चयोगाः, हस्तलाघवम्, विचित्रशाकयूषभक्ष्यविकारक्रिया, पानकरसरागासवयोजनम्, सूचीवानकर्माणि, सूत्रक्रीडा, वीणाडमरुकवाद्यानि, प्रहेलिका, प्रतिमाला, दुर्वाचकयोगाः, पुस्तकवाचनम्, नाटकाख्यायिकादर्शनम्, काव्यसमस्यापूरणम्, पट्टिकावेत्रवानविकल्पाः, तक्षकर्माणि, तक्षणम्, वास्तुविद्या, रूप्यरत्नपरीक्षा, धातुवादः, मणिरागाकरज्ञानम्, वृक्षायुर्वेदयोगाः, मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधिः, शुकसारिकाप्रलापनम्, उत्सादने संवाहने केशमर्दने च कौशलम्, अक्षरमुष्टिकाकथनम्, म्लेच्छितविकल्पाः, देशभाषाविज्ञानम्, पुष्पशकटिका, निमित्तज्ञानम्, यन्त्रमातृका, धारणमातृका, सम्पाठ्यम्, मानसी काव्यक्रिया, अभिधानकोशः, छन्दोज्ञानम् क्रियाकल्पः, छलितकयोगाः, वस्त्रगोपनानि, द्यूतविशेषाः—आकर्षक्रीडा, बालक्रीडनकानि, वैनयिकीनाम्, वैजयिकीनाम्, व्यायामयिकीनाम् च विद्यानां ज्ञानम्, इति चतुःषष्टिरंगविद्याः।—कामसूत्र अधिकरण—१, अध्याय ३।

३. साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः।—भर्तृहरिशतकम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

• वैदिक ऋषियों को भी संगीत का अच्छा ज्ञान था। ऋग्वेद के बहुत से मन्त्र संगीत-तत्त्व से पूर्णरूपेण ओत-प्रोत हैं। यही नहीं, गेय पदों के समान वैदिकमंत्रों में पदवृत्ति[1] पायी जाती है। मंत्रों को पढ़ने के लिए उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित, इन तीन स्वरों का प्रयोग किया जाता है। वैदिककाल में आर्यगण इन ऋचाओं को गा-गाकर पढ़ते थे। ऋग्वेद की तुलना में सामवेद के मंत्रों में गीततत्त्व अधिक है। इसी से यह वेद आर्चिक और गेय, इन दो भागों में विभक्त है। गेयभाग को यज्ञ के समय उद्गातागण मधुरस्वर से गाते थे। सामवेद में दुन्दुभि, स्कन्दवीणा, वीणा आदि वाद्ययंत्रों का उल्लेख है।

समयानुसार संगीत को शास्त्र का रूप दिया गया। संस्कृतभाषा में इस विषय पर भी विद्वानों ने पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ लिखे। उनमें से कुछ तो विनष्ट हो गये, कुछ शेष हैं जिनमें से शास्त्रीयगायन के प्रेमी पण्डितों की मण्डली में आज भी राजकुमार जगदेकमल्ल का 'संगीत-चूड़ामणि', महाराज हरपाल का 'संगीतसुधाकर', सोमराज देव का 'संगीतरत्नावली', शार्ङ्गदेव

---

१. इति वा इति मे मनोगामश्वं सनुयामिति। कुवित्सोमस्यापामिति।।
प्रवाता इव दोधत उन्मा पीता अयंसत। कुवित्सोमस्यापामिति।।
उन्मा पीता अयंसत रथमश्वा इवाशवः। कुवित्सोमस्यापामिति।।
उप मा मतिरस्थित वाश्रा पुत्रमिव प्रियम्। कुवित्सोमस्यापामिति।।
अहं तष्टेव बन्धुरं पर्यचामि हृदा मतिम्। कुवित्सोमस्यापामिति।।
—इत्यादयः ऋग्वेदस्य दशममण्डलेऽष्टमाष्टकस्य षष्ठाध्यायस्य १-१३ मंत्राः।

तथा—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।
यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।
यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम।।
—इत्यादयः ऋग्वेदस्याष्टमाष्टकस्य सप्तमाध्यायस्य १-४ मंत्राः।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का 'संगीतरत्नाकर', अल्लराज का 'रसतत्त्वसमुच्चय', पार्श्वदेव का 'संगीतसमयसार', भुवनानन्द का 'विश्वप्रदीप', महाराणा कुम्भा का 'संगीतराज' ग्रन्थ लोकप्रिय हैं।

इन ग्रन्थों की लेखन-प्रणाली अलंकार, छन्द और नाट्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों से भिन्न है। संगीत सम्बन्धित स्वर, ताल, लय, मूर्च्छना, ग्राम, राग आदि का विवेचन, विश्लेषण तथा लक्षण तो मिलता है, पर अलंकार, छन्द, नाट्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों के समान उदाहरण देकर प्रत्येक विषय को इन ग्रन्थों में समझाया नहीं गया। मेरा अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार धनंजय के 'दशरूपक' और विश्वनाथ के 'साहित्यदर्पण' के छठे परिच्छेद में नाट्य विषयक सारी बातों को लक्षण के साथ उदाहरण देकर स्पष्ट किया गया है, वह पद्धति इन ग्रन्थों में नहीं है। संभवतः इन संगीत ग्रन्थों में उल्लिखित लक्षण के अनुसार उदाहरण संस्कृत में न होकर तत्कालीन देश्यभाषाओं में रहे हों, इसी से ग्रन्थकारों ने उदाहरण नहीं दिया।

यूनानी साहित्यकारों ने कविता को संगीत के अन्तर्गत माना है। पाश्चात्य-साहित्य-शास्त्र के अनुसार उसके विभिन्न भेद हैं। प्रकृतिसम्बन्धी, धर्मसम्बन्धी, प्रेमसम्बन्धी, चतुर्दश-पदी, स्तुतिसम्बन्धी, दार्शनिकगीत, शोकगीत आदि। भारतीय अलंकारशास्त्र के आचार्यों के मत में गीतकाव्य की कोई स्थिति नहीं है। भामह, वामन, दण्डी, रुद्रट, मम्मट, आनन्द-वर्धन, विश्वनाथ, पण्डितराज जगन्नाथ आदि आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में काव्य के विभिन्न ग्रन्थों में काव्य के विभिन्न भेद और उपभेदों का वर्णन करते समय गीतकाव्य शब्द का प्रयोग तथा गीतात्मक कृतियों का विवेचन नहीं किया। शायद इसका मुख्य कारण यह है कि वात्स्यायन आदि आचार्यों ने गीत को काव्य से भिन्न कला की अन्य विधा स्वीकार की थी। इससे साहित्यशास्त्र के आचार्यों ने यह समझा कि गीत और गीतात्मक कृतियों के विवेचन, विश्लेषण का काम कला-विवेचक ग्रन्थों का है। इसी से भारतीय साहित्यशास्त्र के आचार्यों ने इस प्रकार की चर्चा काव्य-विवेचन के प्रसंग में नहीं की। भरत के नाट्यशास्त्र में 'छन्दोगीतकम्'[1] और 'गेयपदम्'[2] का प्रयोग मिलता है।

---

१. छन्दोगीतकमासाद्य त्वङ्गानि परिवर्तयेत्।—भरतनाट्यशास्त्र। अध्याय ४, श्लोक ३००।

२. आसने चोपविष्टायां तन्त्री भाण्डोपबृंहितम्।
गायने गीयते शुष्कं तद्गेयपदमुच्यते॥
—भरतनाट्यशास्त्र, अध्याय २०, श्लोक १४०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पाश्चात्य संस्कृत-साहित्य के इतिहास लेखक कीथ आदि मनीषियों ने अपने इतिहास-ग्रन्थों में गीतकाव्य का विवेचन और विश्लेषण किया है। वह पाश्चात्य साहित्यशास्त्र की परम्परा के अनुसार ठीक है, पर इन इतिहास लेखकों से प्रभावित होकर भारतीय संस्कृत साहित्य के इतिहास लेखकों ने कालिदास के 'मेघदूत'[1], पण्डितराज जगन्नाथ के 'भामिनी-विलास', अमरुकशतक, भर्तृहरिशतक प्रभृति रचनाओं को गीतकाव्य कहा है। मेरे मत में यह ठीक नहीं है। इसे भारतीय संगीतशास्त्र के अध्ययन की अज्ञता और साहित्यशास्त्र की परम्परा की अनभिज्ञता कहा जाय तो अनुचित न होगा।

संगीतशास्त्र के नियम के अनुसार गेयपद में ध्रुवक[2] का होना अत्यन्त आवश्यक ही नहीं, किन्तु अनिवार्य है जिसे वर्तमानकाल के संगीतज्ञ 'टेक' कहते हैं। इसके विना कोई भी पद 'गेयपद' की कोटि में नहीं आ सकता। क्या 'मेघदूत', अमरुशतक', धोयी का 'पवनदूत', विल्हण की 'चौरपंचाशिका', गोवर्धनाचार्य की 'आर्यासप्तशती' आदि काव्यों में संगीतशास्त्र के ध्रुवक का तथा अन्य नियमों का पालन किया गया है? यदि नहीं तो फिर इन कृतियों को गीतकाव्य की कोटि में क्यों रखा जाता है? इसे भारतीय संगीतशास्त्र के नियमों से अनभिज्ञ पाश्चात्य इतिहास लेखकों का अन्धानुकरण ही कहना चाहिए।

अब प्रश्न यह उठता है कि भारतीय साहित्यशास्त्र के आचार्यों ने स्वर, ताल, लयबद्ध गीतात्मक सरस कृतियों को काव्य के किसी भेद अथवा उपभेद की कोटि में नहीं रखा है तो कवि-कोकिल जयदेव की विश्वप्रसिद्ध कृति 'गीतगोविन्द' की साहित्य-जगत् में क्या स्थिति थी? क्या गीतात्मक रचनाएँ काव्य की किसी विधा के अन्तर्गत नहीं आती थीं?

---

१. संस्कृत के गीतकाव्यों का आदिग्रन्थ महाकवि कालिदास का 'मेघदूत' है।—(संस्कृत साहित्य का इतिहास, ले० बलदेव उपाध्याय, तृतीय संस्करण, पृष्ठ २९६); संस्कृत-साहित्य की रूपरेखा, गीतकाव्य अध्याय, पृष्ठ २८५ से ३४० तक, ले० श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय, श्री शान्तिकुमार नानूराम व्यास।

२. न विवेकं विना ज्ञानं, ध्यानं नात्र रसं विना।
श्रद्धया न विना दानं, न गानं ध्रुवकं विना॥

—रागार्णव नामक ग्रन्थ से हिन्दी साहित्यकोश में उद्धृत, पृष्ठ २७५।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गीतात्मक शैली में लिखित कृतियों के लिए प्राचीनकाल में शास्त्रीय शब्द क्या था? इन सब प्रश्नों पर भी संक्षेप में इस प्रसंग में विचार कर लेना अनुपयुक्त नहीं होगा।

अभिनवगुप्त ने भरतनाट्यशास्त्र की टीका 'अभिनवभारती' में गीत शब्द की व्युत्पत्ति[1] 'गीयते इति गीतं काव्यं' लिखकर गीत और काव्य में कोई अन्तर नहीं माना। प्रकारान्तर से उन्होंने गीत शब्द को काव्य का पर्यायवाची स्वीकार कर लिया है। इसी टीका में अभिनवगुप्त ने गीतविद्या में लिखित काव्यों की संज्ञा रागकाव्य[2] दी है। यही नहीं, ढक्क और ककुभराग में गाये जाने वाले 'राघवविजय' और 'मारीचवध' नामक दो रागकाव्यों का उल्लेख भी किया है। ये काव्य नृत्यप्रधान और अभिनयात्मक थे। इनका अभिनय गाकर किया जाता था। इसी से इन्हें रागकाव्य कहा है। रागकाव्यों के इस अस्तित्व को स्वीकार कर लेने पर यह भी सिद्ध हो जाता कि जयदेव के पहले इस प्रकार के रागकाव्यों के लिखने की अपनी परम्परा थी। जयदेव का 'गीतगोविन्द' काव्य उसी परम्परा का प्रतीक है, न कि अपभ्रंश में लिखित गीतकाव्य का। अतः संस्कृत-साहित्य के कुछ इतिहासलेखकों का यह कथन—'भारतीय साहित्य में इस अनुपम रचनाशैली का सूत्रपात सर्वप्रथम जयदेव के 'गीत-गोविन्द' से देख पड़ता है', भ्रान्तिमूलक है।

अभिनवगुप्त ने इन रागकाव्यों को नाट्य की कोटि में माना है। अतः संस्कृत के साहित्यवेत्ता कुछ पाश्चात्य मनीषीगण जयदेव के 'गीतगोविन्द' को गोपनाट्य[3] अथवा गीतिनाट्य[4]

---

१. गीयते इति गीतं, काव्यम्।—भरतनाट्यशास्त्र। अध्याय ४, पृष्ठ १८०।

२. अथोच्यते राघवविजयादिरामविजयादिरागकाव्यादिप्रयोगो नाट्यमेवाभिनय-योगात्।—भरतनाट्यशास्त्र। अध्याय ४, पृष्ठ १७२।

राघवविजयमारीचवधादिकं रागकाव्यम्।—भरतनाट्यशास्त्र। अध्याय ४, पृष्ठ १८१।

तथाहि राघवविजयस्य हि ठक्करागेणैव विचित्रवर्णनीयत्वेन निर्वाहः। मारीचवधस्य ककुभग्रामरागेणैव अत एव रागकाव्यानि उच्यन्ते एतानि।—भरतनाट्यशास्त्र—पृष्ठ १८२।

३. जयदेव की—यह कविता एक छोटा-सा गोपनाट्य है जैसा कि जौन्स का मत है, या एक गीतिनाट्य है, जैसा कि लासेन का कहना है, अथवा परिष्कृत यात्रा है, जैसा कि फान श्रेडर इसका नामकरण करना पसन्द करते हैं—कीथ का संस्कृतसाहित्य का इतिहास, पृष्ठ २३१—(डॉ० मंगलदेवकृत हिन्दी अनुवाद)।

४. जयदेव ने उक्त काव्य को सर्गों में विभक्त किया है। यह इस बात का स्पष्ट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आदि की कोटि में स्थान देते हैं और कुछ विदेशी तथा भारतीय[1] विद्वान् इस मत का विरोध करते हैं। अभिनवगुप्त के उक्त साक्ष्य से इसके विरोध का कोई औचित्य नहीं है प्रत्युत गीतात्मक कृतियों को काव्यविधा के अन्तर्गत मान लेना चाहिए और गीतकाव्य न कहकर रागकाव्य कहना चाहिए। 'गीतगिरीश' भी उसी रागकाव्य की परम्परा में है।

संक्षिप्त कथावस्तु

प्रस्तुत-काव्य में बारह सर्ग हैं। कवि ने मंगलाचरण के बाद बड़े आदर और श्रद्धा से श्रीहर्ष,[2] भारवि और कविकुलगुरु कालिदास का स्मरण किया है। इसी प्रसंग में कवि ने स्पष्ट कहा है कि यह काव्य मैंने कविराजराज जयदेव के अनुकरण में लिखा है। उसके पश्चात् कवि विघ्नहरण गणेश की वन्दना में एक गीत लिखकर अत्यधिक कौतूहलकारी पद्धति से काव्य की कथा का सूत्रपात करता है। ऐसे रागकाव्यों में कथा की योजना बहुत अल्प होती है, भावों की उद्‌भावना में ही उनका विस्तार होता है, प्रणय के वियोग में उनका आदि-अन्त रहता है। 'गीतगिरीश' की स्थिति भी यही है। प्रणयबद्ध शिव-पार्वती के वियोग एवं संयोग की घटनाएँ, आलम्बन, उद्दीपन के रूप में ऋतुवर्णन तथा शिव, गंगा, पार्वती और उनकी जया, विजया दो सखियाँ—ये पाँच पात्र, इतना ही इस काव्य का समस्त कलेवर है।

प्रत्येक सर्ग के अन्त में शिव-पार्वती के प्रेम-व्यापार की किसी न किसी घटना का चामत्कारिक वर्णन कविकृत आशीर्वचन के रूप में है।

संस्कृतभाषा का वाङमय अत्यन्त विशाल है। उसमें लौकिक साहित्य की विधा काव्य

विद्ध है कि उन्होंने इसे काव्य की कोटि का माना है। अंकों और विष्कम्भादि में विभक्त करके इसे नाटकीय प्रयोग बनाने का उनका विचार नहीं था।—कीथ का संस्कृतसाहित्य का इतिहास, पृष्ठ २३२—डॉ० मंगलदेवकृत हिन्दी अनुवाद।

१. किन्तु जयदेव ने 'गीतगोविन्द' को सर्गों में विभाजित किया है। अतः उन्हें अपने कृति का काव्य के अन्तर्गत ही समावेश इष्ट था।—संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३२६—(ले० स्व० चन्द्रशेखर पाण्डेय और नानूराम व्यास)।

२. हर्षं श्रीहर्षनामा रचयति वचनैरद्भुतार्थैर्दुरूहै-
गंम्भीरैर्भावतो भारविरपि तनुते चित्तपद्मप्रबोधम्।
वाग्गुम्फैः सप्रसादैर्मृदुगदितपदैः कालिदासः प्रसीद-
त्युच्चैर्लोकेषु तेषामहमपि चरणाम्भोजभृङ्गोऽस्मि रामः॥

२—गीत०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

का स्वरूप सरल, सरस तथा मनोहारी है। यही कारण है कि सहृदय सुधी-समाज इस विधा के प्रति तुरन्त आकृष्ट हो जाता है। इसके विवेचन और विश्लेषण के लिए संस्कृत में उच्च-कोटि के समीक्षात्मक कई ग्रन्थ लिखे गये हैं। इन ग्रन्थों में इनके लेखकों ने काव्य तथा इसके भेदोपभेदों का वर्णन बड़े पाण्डित्यपूर्ण ढंग से किया है। काव्य के भेद—दृश्यकाव्य के संबंध में दशरूपक, नाट्यदर्पण और नाटकलक्षणरत्नकोष सरीखे स्वतन्त्र ग्रन्थ लिख दिये गये। पर महाकवि जयदेव द्वारा प्रवर्तित 'रागकाव्य' के विषय में अलंकारशास्त्र के प्रायः सभी आचार्य सर्वथा मौन हैं।

प्रस्तुत कृति 'रागकाव्य' है। महाकवि जयदेव के 'गीतगोविन्द' की परम्परा[1] में लिखा गया है। इसे कवि ने ग्रन्थारम्भ में सहर्ष स्वीकार किया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रस्तुत-काव्य अनुकरणात्मक होने के कारण सर्वथा मौलिकता से रहित है। संस्कृत के सभी लेखक प्रसिद्धि, प्रचार-प्रसार और आत्मविज्ञापन से दूर रहकर किसी भी विषय पर लिखने से पूर्व उसके सम्बन्ध में अध्ययन, अनुशीलन, मनन, चिन्तन, विश्लेषण और विवेचन में निष्ठा-पूर्वक काफी समय लगाते रहे और उसके पश्चात् ही अपनी विचारधारा को लिपिबद्ध करने के लिए पूर्ण विश्वास के साथ लेखनी उठाते रहे। यही कारण है कि संस्कृत-वाङ्मय में निम्नस्तर का साहित्य नहीं के समान है। संस्कृत भाषा और उसके लेखकों की यह बहुत बड़ी विशेषता है। इसी से यह काव्य अनुकरणात्मक होने पर भी मौलिक भावनाओं तथा कोमल-कान्तपदावली से ओत-प्रोत है। काव्य को पढ़ने से प्रतीत होता है कि कवि का भाषा पर असीम अधिकार है। काव्य के प्रत्येक सर्ग का वर्णन पाठक के मन को रससिक्त कर देता है। किसी भाव की अभिव्यक्ति-शक्ति कवि के पास प्रातिभ है।

हर्यक्षं कपिरनुवर्तते यथाऽयम्,
खद्योतो रविमपि निर्धनो यथाऽऽढ्यम्।
औत्सुक्यादहमधुना तथा ऽनुकुर्वे,
लालित्यं कविजयदेवभारतीनाम्॥

गीतगिरीशम्। सर्ग १, श्लोक २-३।

१. औत्सुक्यादहमधुना तथाऽनुकुर्वे,
लालित्यं कविजयदेवभारतीनाम्॥

—प्रथम सर्ग, पृष्ठ २।

Dr. Urmila Sharma Collection. Varanasi.

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri.

काव्य की संघटना तथा द्वादश सर्ग में विभक्त करने की परम्परा से ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक इसे महाकाव्य की कोटि में परिगणित कराना चाहता था। संपादन के लिए प्राप्त दो हस्तलिखित प्रतियों में एक प्रति के सर्गान्त में महाकाव्य शब्द का प्रयोग भी पाया जाता है जिसे मैंने पाठभेद में उल्लिखित कर दिया है। पर कोई काव्य द्वादश सर्ग में लिखे होने के कारण ही महाकाव्य नहीं हो सकता। महाकाव्य की जो विशेषताएँ हैं, इसमें नहीं पायी जातीं। आचार्यों द्वारा निर्धारित महाकाव्य के लक्षण भी इसमें पूर्णतया नहीं घटते। इस कारण मेरी व्यक्तिगत राय में इसे महाकाव्य कहना सर्वथा अनुचित होगा। हाँ, हम इसे भावनाप्रधान लघुकाय रागकाव्य कह सकते हैं। कवि ने इस रागकाव्य का प्रारम्भ बड़े नाटकीय ढंग से किया है। सबसे पहले उसने एक गीत 'ललितराग' में विघ्नहरण भगवान् गणपति की वन्दना में लिखा है। उसके पश्चात् कवि ने दूसरे गीत में शंकर भगवान् के विराट् स्वरूप अष्टमूर्ति का वर्णन किया है। यह वर्णन जयदेव के दशावतार वर्णन के समान सरस और आकर्षक है। इसके बाद कवि काव्य की कथा का प्रारम्भ भूमि पर चेतन तथा अचेतन जन के मन को आन्दोलित करने वाले ऋतुराज के आगमन वर्णन से करता है—

सरसरसालकुसुममञ्जरिकामधुपिञ्जरितदिगन्ते।
स्मरसृणिकिंशुकलग्नविरहिजनकालखण्डनिभवृन्ते।।
विहरति पुररिपुरिह मधुमासे।
रमयति सुररमणीरधिकं प्रतितरुकृतकुसुमविकासे।।—ध्रुवपदम्

सरसिजपत्रनिहितमदनाऽक्षरनिकरोपमितमिलिन्दे।
कुण्ठितयुवतीहठकलकण्ठरवाऽहितयुववृन्दे।
फुल्लतमालनिबहतिमिरापहकृतकुरुकसुमदीपे।
केसरबकुलगन्धबन्धुरे ह्रीनतविकुसुमनीपे।।

—प्रथम सर्ग, पृष्ठ ७-८

इस काव्य के सभी गीत तथा कथायोजक समस्त छन्द इसी प्रकार समासयुक्त एवं कहीं-कहीं असमस्त अलंकृत शैली में लिखे गये हैं। गीतों की तुलना में छन्दों में कवि ने समासयुक्त पदावली का प्रयोग कम किया है। अलंकृत-शैली में लिखे होने पर इसकी भाषा प्रवाहपूर्ण, प्रांजल तथा प्रसादगुणमण्डित है। यही कारण है कि आलंकारिक कवियों की कलात्मक कृतियों के समान प्रस्तुत-काव्य पाठकों के लिए दुरूह नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भाषा-प्रयोग की संस्कृत में अपनी एक परम्परा है। संस्कृतभाषा के पूर्ववर्ती कवि वाल्मीकि, कालिदास भास आदि की भाषा सरल, कृत्रिमता-रहित तथा प्रसादगुण से परिपूर्ण है। किन्तु उत्तरवर्ती संस्कृत कवि भवभूति, मुरारि राजशेखर, बाण, मयूर, श्रीहर्ष आदि कवियों की भाषा कलात्मक शब्द-विन्यास तथा गौडी रीति की द्योतक पदावली से भरी है। यह दोष इस रागकाव्य में भी है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि उत्तरवर्ती कवियों की कृतियों के समान यह दुरूह है प्रत्युत इसके विपरीत इसके गीत माधुर्यगुणपूर्ण तथा नरनारी के विभिन्न मनोगत भाव-भंगिमाओं के चित्रण से ओत-प्रोत हैं। इन भाव-भंगिमाओं की अभिव्यक्ति करने के लिए कवि ने भगवान् शंकर और माता पार्वती का सहारा लिया है। लेखक ने प्रत्येक गीत में मानव-मन की विभिन्न भावनाएँ बड़ी शिष्टता और सजगता के साथ प्रकट की हैं। ऐसे ही भावों से पूर्ण एक गीत का कुछ अंश पढ़िये। भगवान् शंकर के गले से लिपटी गंगा को देखकर कुपित हुई जगन्माता पार्वती को प्रसन्न करने के लिए शिव अनुनय-विनय कर रहे हैं—

रम्यसेऽप्यनुगम्यसेऽपि च नम्यसेऽपि भवानि!
एहि देहि च दर्शनं कुरु चाटुकानि नवानि॥
क्वासि साहसिके! विहासकशीलतामपहाय॥
जीवयोरसि हेमकुम्भनिभौ कुचौ विनिधाय।
मन्तुमर्हसि मन्तुमेतमुमे! न मे न कदाऽपि।
एवमाचरितास्मि मानिनि! दास एष सदाऽपि॥

—तृतीय सर्ग, पृष्ठ २१-२२।

कवि ने यहाँ कैसी मर्मस्पर्शी, प्रसादगुणपूर्ण, प्रसंगानुकूल, संवादमूलक शब्दावली का प्रयोग किया है।

गीतकाव्य होने पर भी प्रबन्धकाव्य के समान इस काव्य का सारा कथानक एक-सूत्रता से आबद्ध है। पाठक को पढ़ते समय कथा-भंग का आभास नहीं होता। इसे कवि-कर्म की कुशलता और उसकी प्रतिभा की चरम परिणति कहना चाहिए। इसके लिए कविने मध्य-मध्य में कथायोजक सशक्त छन्दों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है। अन्य प्रबन्धकाव्यों के समान प्रस्तुत कृति अन्तर्द्वन्द्व तथा घटना-प्रधान होने पर भावुकतामूलक भावप्रधान है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसी से कभी-कभी कवि भावुकता के वशीभूत होकर उसमें इतना लीन हो जाता है कि उसे इस बात का ज्ञान नहीं रहता कि प्रस्तुत कृति जगन्माता पार्वती और जगत्पिता भगवान् शंकर से सम्बन्धित है। इसके विपरीत कवि द्वारा अधिकांश स्थल ऐसे चित्रित हैं जैसे साधारण नर-काव्य में पाये जाते हैं। अत्यन्त गतिशील एक अष्टपदी का कुछ अंश देखिए और रेखांकित पद के अर्थ की ओर ध्यान दीजिए—

नन्दापुलिने मृगमदमलिने सुररमणीरमयन्तम्।
पश्य विभावरीरिति भावं रतिपतिमपि नमयन्तम्॥
अलकोपवने शीतलपवने विहरति सति स कपर्दी॥
अरिकरिकुम्भविबुधवनिताजनपीनस्तनपरिमर्दी॥––ध्रुवपदम्।
धवलं वसनं कृतविधुहसनं सितनिशि सखि! परिधेयम्॥
किंकिणिकाऽऽस्ये नवरवलास्ये मृगमदरज इह देयम्॥
सति रतिकाले लास्यसि बाले! स्फटिकगिराविव शम्पा॥
पुरहरहृदये रतिरणविदये पुरुषायितधृतकम्पा॥ पृष्ठ ३६-३७

इसे भावना-भावुकता का ही प्रभाव कहना चाहिए कि कवि यहाँ पर माता पार्वती को साधारण नायिका के समान चाँदनी रात में सफेद वस्त्र धारण करने का उपदेश देता है और इसी के साथ उन्हें 'पुरुषायितधृतकम्पा' विशेषण से अलंकृत करता है। यही नहीं, कहीं-कहीं कवि ने माता पार्वती के वियोग में भगवान् शंकर को नारी के वियोग में प्रलाप और विलाप करने वाले साधारण मानस के समान चित्रित किया है। भगवान् शंकर पार्वती के वियोग में इतने भावविह्वल हो जाते हैं कि उन्हें चेतन-अचेत पदार्थ का भी ज्ञान नहीं रहता। वर्ण-साम्य के कारण चन्द्रमा की किरणों में पार्वती का भ्रम होने लगता है, उन्मत्त वियोगी पुरुष की तरह रोने लगते हैं—

क्षिपति स शयनं दिशि दिशि नयनं नयति भवान्यविरामम्।
श्वसितन्तनुते नर्म न मनुते ननु ते स्मरति निकामम्॥
वहति च कोऽहं क्षणमिति मोहं वियदालिन बाले!
भ्रममयभवतीशतसततताऽद्भुतभूमिमकाले॥
बहु हा रावं ज्ञपयति जड इव भवति! कदाचित्॥
सुरनरदानवनवललना न शिवं सखि! सुखयति काचित्॥

—पंचम सर्ग, पृष्ठ ४१-४२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इतना ही नहीं, क्रोधाग्नि से क्षणमात्र में कामदेव को भस्म करने वाले भगवान् शंकर माता पार्वती के सौन्दर्य पर इतने रीझ जाते हैं कि 'तुम्हीं मेरी सब कुछ हो' कहकर सृष्टि-संहारक शंकर अपने को पार्वती का भृत्य उद्‌घोषित कर देते हैं। यह कवि की कल्पना का चमत्कार है।

मम मनोऽसि प्रिये! चक्षुरसि तनुरसि प्राणपञ्चकमसि च सत्यम्।
वदनमुन्नाम्य पीयूषरसवर्षिणा लोचनेन स्नपय भृत्यम्॥

दशम सर्ग, पृष्ठ ६८

माता पार्वती के कजरारे सजल नयन को देखकर भगवान् शंकर को भ्रम होने लगता है कि कहीं चन्द्रमा रात में अन्धकार पीकर उसे उगल तो नहीं रहा है—

कज्जलश्यामलितमश्रुविस्नुतमिदं वहति सुमुखीदृगमुपमानम्।
आगलन्निशि तमिस्रन्निपीयाशु किं चन्द्र उद्‌गिरति तदमानम्॥

दशम सर्ग, पृष्ठ ६८

इसी तरह नैषधकार महाकवि हर्ष की क्लिष्ट कल्पनाओं के समान जटिल कल्पनाओं से पूर्ण इस लघुकाय काव्य में एक नहीं, अनेक स्थल हैं।

रामभट्ट जी सफल कवि हैं। इस काव्य में भाव और कलापंक्ष दोनों ही स्थान-स्थान पर पूर्णरूपेण मुखरित हैं। भट्ट जी प्रधानतया श्रृंगाररस के कवि हैं। श्रृंगाररस में विप्रलम्भ तथा उसके भेदोपभेदों के कुशल चितेरे हैं। प्रयत्न करके देखा जाय तो इस काव्य में विप्रलम्भ के अच्छे उदाहरण मिल जायेंगे। जयदेव के 'गीतगोविन्द' के समान इस राग-काव्य में भी उत्कण्ठिता, प्रोषितपतिका, वासकसज्जा, विप्रलब्धा, खण्डिता, कलहान्तरिता, अभिसारिका आदि नायिकाओं और चिन्ता, मरण, व्याधि, आवेग, असूया, दैन्य प्रभृति अनेक संचारियों के उदाहरण बड़ी सरलता से प्राप्त होंगे। वात्स्यायन के कामसूत्र की शैली का कचाकर्पण, चुम्बन, रतिक्रीडा का भी वर्णन मिलेगा। इसी के चक्कर में आकर कवि अत्यन्त विवेकविहीन हो गया है और उसे श्लीलता और अश्लीलता का अणुमात्र भी ध्यान नहीं रहा। इस काव्य में कुछ स्थल अत्यन्त अश्लील हैं। उसे न उद्धृत करना ही श्रेयस्कर है। मेरी व्यक्तिगतराय में माता पार्वती तथा जगत्पिता शंकर के सम्बन्ध में अश्लीलतापूर्ण चित्रण कवि को कदापि नहीं करना चाहिए। देवकाव्य और नरकाव्य में अन्तर है। प्रस्तुतकाव्य देव-काव्य की कोटि में आता है। नरकाव्य के समान देवकाव्य में मर्यादाविहीन वर्णन नहीं किया

Dr. Urmila Sharma Collection. Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जा सकता। संस्कृत भाषा के समस्त प्रहसन और भाण सामाजिक हैं। मैं उन्हें नरकाव्य के विधा के अन्तर्गत मानता हूँ। इस तरह की कृतियों में अश्लीलता आ जाये तो क्षन्तव्य है। यही कारण है कि संस्कृत के सारे प्रहसन और भाण प्रायः अत्यन्त अश्लील हैं। सामाजिक होने के कारण आचार्यों ने उसे अनुचित नहीं माना है। जनसमाज के समक्ष सामाजिक दुर्बलता रखने के लिए साहित्यकार द्वारा यथार्थवादी चित्रण करना अपराध नहीं है। यथार्थवाद और अश्लीलता का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। जहाँ यथार्थवाद है वहाँ अश्लीलता और जहाँ अश्लीलता है वहाँ यथार्थवाद का अस्तित्व ध्रुव है। हाँ, ऐसा साहित्य आदर्शवादियों की दृष्टि और विचार में सुन्दरम् से परे अवश्य रहेगा। इस रागकाव्य में 'सुन्दरम्' की अपेक्षा खटकने वाली अश्लीलता पायी जाती है।[1] यह स्थिति कुछ ही स्थानों पर है। काव्य का अधिक भाग शृंगाररस की सीमा में है। संस्कृत-साहित्य में कवियों द्वारा घनघोर शृंगाररस-सिक्त काव्य लिखने की एक परम्परा चल पड़ी थी। योगी भर्तृहरि सदृश कवि भी इस पद्धति से प्रभावित थे। इनका शृंगारशतक इसका उदाहरण है। तत्कालीन समाज में लोकप्रिय इस परम्परा से भक्तजनों की दृष्टि में आध्यात्मिक ग्रन्थ श्रीमद्भागवत भी अछूता नहीं रहा। उसके[2] दशमस्कन्ध में गोपिकाओं के साथ भगवान् श्रीकृष्ण की जलक्रीड़ा और रासक्रीड़ा का वर्णन बड़ा ही हृदयहारी है। इस परम्परा का उदात्त और विकसित रूप कविवर अमरुक कृत 'अमरुकशतक' के व्यंग्यात्मक मुक्तकों में पाया जाता है। उसी परम्परा का अवलम्बन करके महाकवि जयदेव ने रससिक्त काव्य 'गीतगोविन्द' लिखा। इसी से कुछ समालोचकों का मत है कि जयदेव का 'गीतगोविन्द' भी मौलिक नहीं है, पूर्वनिर्धारित शृंगारिक वर्णन परम्परा का अनुकरण मात्र है। जयदेव ने संस्कृतकविता को संगीत के तान में बिठाकर साहित्य और संगीत का अपूर्व समन्वय किया है। यही जयदेव की प्रतिभा की मौलिकता और नवीनता है। इस कारण महाकवि जयदेव को संस्कृत में गीतकाव्य का एक मात्र प्रवर्तक कहा जाय तो अनुचित

---

१. चलदलदलजित्वरतरमङ्गमुपायनमुपनय महाम्।
मृदुनिधुवनमधुना विदधे मम साहसमिदमिह सह्यम्।।
द्वादश सर्ग, पृष्ठ ८५

२. बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरुनीवीस्तनाऽऽलभननर्मनखाग्रपातैः।
क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणामुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयांचकार।
—भागवत दशमस्कन्ध, अध्याय २९, श्लोक ४६।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न होगा। इस दृष्टि से जयदेव के 'गीतोविन्द' के अनुकरण में लिखा गया रामभट्ट का 'गीतगिरीशम्' रागकाव्य भी सफल कृति है।

संस्कृत में एक कहावत है—'शास्त्रेषु भ्रष्टाः कवयो भवन्ति'। पर रामभट्ट इसके अपवाद थे। इन्हें विभिन्न शास्त्रों का अच्छा ज्ञान था। व्याकरणशास्त्र का अध्ययन तो इनका अत्यन्त गम्भीर था। इसी से इस काव्य में व्याकरण-प्रत्ययों में निर्मित शब्द और क्रियाओं का प्रयोग कवि ने जम कर किया है। एतद्विषयक कुछ उदाहरण देखिए।

रागकाव्य का प्राण है माधुर्य। इसके बिना पाठक और श्रोता दोनों के तन-मन को तरल और सरल करने की क्षमता गीतों में नहीं रहती। तद्धित प्रत्ययान्त शब्दों के प्रयोग से रागकाव्य में माधुर्य की सृष्टि होते में बाधा होती है। कारण कि तद्धित प्रत्यय से निर्मित शब्द सरलता से उच्चरित नहीं हो पाते। इन शब्दों में कुछ कठोरता रहती है। पर रामभट्ट ने इस गीतकाव्य में अपना शब्द-शास्त्रीय-वैदुष्य प्रकट करने के लिए 'सौरी'[1], हैमवती[2], नैल्य[3], जैह्मय[4], शारद[5], सौहृद[6] जैसे तद्धित प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग किया है। इसी से प्रतीत होता है कि रामभट्ट दाक्षिणात्य थे। दाक्षिणात्यों के विषय में संस्कृत-जगत् में यह कहावत अत्यन्त प्रसिद्ध है कि 'तद्धितप्रियाः दाक्षिणात्याः'।

व्याकरणशास्त्र के एक आचार्य भागुरि हुए हैं। उनके मत के 'अवगाहः और वगाहः, पिधानम् और अपिधानम्' दोनों प्रयोग शास्त्रसंमत हैं। संस्कृत के वैयाकरणों ने अव्यय प्रकरण में इसकी चर्चा की है। इस पद्धति के प्रयोग भी इस काव्य में पाये जाते हैं। 'अवलम्बन' के स्थान पर कवि ने केवल 'वलम्बन' का प्रयोग किया है, जिसे प्रायः कविगण नहीं

---

१. चन्दनमपि तापयसि च तामति शरदि द्युतिरिव सौरी।—पृष्ठ २६।
२. हरविरहाकुलहैमवतीसुवचोऽस्तुमनस्यवदाते।—पृष्ठ २७।
३. तत्प्रकटयति बहिगलनैल्यनिभेन शितिम्निजमंशम्। पृष्ठ ६०।
४. न नतिशतैरपि तवसोपैतिमनस्तव जैह्मय निधानम्। पृष्ठ ७४।
५. रविकरविच्छुरितान्तरशारदमुदिरमिव स्फुटशोभम्।—पृष्ठ ७९।
६. शशिसरसीरुहयोरिव सौहृदमघटितमपि घटयान्तरे। पृष्ठ ८७।
७. वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः।
आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा॥
(अवगाहः। वगाहः। अपिधानम्। पिधानम्)—सिद्धान्तकौमुदी, अव्यय प्रकरण
८. कुचकलशवलम्बनशीलम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करते। पर रामभट्ट ने पाठकों पर अपनी विद्वत्ता की धाक जमाने के लिए इस तरह के अप्रसिद्ध प्रयोग निर्भीकता के साथ किये हैं।

इसी तरह इस काव्य में कामशास्त्र में प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक कामशास्त्रीय 'सुरथा', 'लतावेष्टितम्' जैसे शब्द भी पाये जाते हैं। यही नहीं, लेखक ने शिवजी के अर्थ में 'वृषभध्वज' के स्थान पर अप्रसिद्ध 'वृषध्वज' तथा सोना के अर्थ में 'पुरट' सरीखे अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए इस काव्य में अत्यधिक किया है।

कवि ने साधारण जन-समाज में प्रचलित लोकप्रिय कहावतों का भी प्रयोग इस काव्य में खुल कर किया है। इसके दो उदाहरण देखिए—

स्रोत इवैति गतन्न वयः पुनरूनितमृदुकिरणाऽऽस्ये।
भज भवमङ्गभवानि कौमुदीमदहरमोहनहास्ये।

—पंचम सर्ग, पृष्ठ ३५

त्वामधिचन्दनवनमियमन्यभृताऽऽह्वयतीव सुलब्धम्।
क्षणकरणीये कर्मणि तरुणि! प्रकरिष्यसि नु किमब्दम्॥

—एकादश सर्ग, पृष्ठ ७५।

हिन्दी में एक कहावत है—'हाथी के दाँत खाने के दूसरे और दिखाने के दूसरे'। कवि ने बड़े रोचक ढंग से इसे अपने काव्य में स्थान दिया है—

अनुकलमनुरागन्तस्य दूति! ब्रवीष्य-
प्रकटकपटमस्य त्वन्न जानासि नूनम्।
बहिरिह करिणो यान् दर्शयन्ति स्वदन्तान्,
भवति खलु ततोऽन्या चर्वणार्थं रदाली॥

—सप्तम सर्ग, पृष्ठ ५८

संस्कृत-साहित्य में उत्तरवर्ती कवियों द्वारा गर्वोक्ति लिखने की परम्परा चल पड़ी थी। पूर्ववर्ती कवि कालिदास आदि ने जहाँ 'मन्दः कवियशः प्रार्थी' लिखकर अपनी विनम्रता

---

१. विहरन्तीषु रतिप्रतिबिम्बतनूषु वृषध्वजचित्तम्।—पृष्ठ ११।
२. पुरटरशनामित्युक्तः श्रीहरोऽपि तथाऽकरोत्,—पृष्ठ ९०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और विनयशीलता प्रकट की, वहीं उत्तरवर्ती कवि राजशेखर आदि ने अपने को वाल्मीकि[1] का अवतार उद्घोषित कर दिया। उसके वाद तो संस्कृत में ओजस्वी भाषा में कवियों ने गर्वोक्तियाँ लिखीं। उनमें से प्रसन्नराघव नाटक के लेखक जयदेव, नैषधकार श्रीहर्ष, रसगंगाधर के कर्ता आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ आदि की गर्वोक्तियाँ संस्कृत-जगत् में वड़ी प्रसिद्ध, प्रचलित और प्रत्येक संस्कृत-विद्वान् के मुख पर हैं। इन सब की गर्वोक्तियों में भाषा का चमत्कार तथा अहंकार की अन्तिम परिणति देखने और पढ़ने लायक है। इस दशा में प्रस्तुत काव्य के लेखक रामभट्ट को उत्तरवर्ती संस्कृत-कवियों की इस परम्परा से प्रभावित होना घोषित करना पड़ा और मुखचन्द्र से निकली वाणी में पृथ्वी की पण्डित-मण्डली को सुधा के समान सुख देने वाली क्षमता प्रतीत होने लगी। यही नहीं, इन्हें अपनी कविता में ईख, मिश्री आदि के माधुर्य को तिरस्कृत करने की शक्ति की अभिव्यक्ति का आभास होने लगा। इन गर्वोक्तियों का भी आनन्द पाठक लें—

कविनृपतिरामजिद्वदनचन्द्रच्युता भूविबुधसुखकरसुधेयम्।—दशम सर्ग, पृष्ठ ७०

श्रीकविरामभणितमतिसुन्दरगिरिजोद्यमनसुगीतम्।

ऐक्षवमधुमाकन्दसिताऽमृतरसमधुरत्वमतीतम् ॥

—एकादश सर्ग, पृष्ठ ७६

गीतमय गर्वोक्ति का आनन्द लेने के वाद कविकृत श्लोकमय गर्वोक्ति का भी आनन्द लें—

मधु! विधुतमसि त्वं खण्ड! ते खण्डता स्तात्,
सरक! नरकमेव त्वं त्वमिक्षो! क्षुरोऽसि।
अमृतमनृतमेवात्र! म्रियस्वाधर त्वम्,
न हि किमधर इमा यद्रामवाचो जयन्ति॥—द्वादश सर्ग, पृष्ठ ९०

कवि मनोहारी गीत लिखने में जितना निपुण और कुशल है, उससे कहीं अधिक प्रसिद्ध वृत्तों में सफलतापूर्वक श्लोकों के प्रणयन में भी सिद्धहस्त है। यह वात इस काव्य के गीतों के मध्य-मध्य में प्रयुक्त कथा-योजक छन्दों से स्पष्ट प्रतीत होती है। कवि ने इस काव्य में

---

१. बभूव वल्मीकभवः कविः पुरा, ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया, स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

विभिन्न प्रकार के छन्दों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है, जिनमें 'मालभारिणी' जैसे अप्रसिद्ध वृत्त भी हैं। इन छन्दों की भाषा गीत की भाषा के समान अत्यन्त प्रौढ, प्रांजल और परिमार्जित है। जिससे कवि की भाषा पर अटूट अधिकार तथा भाव के अनुरूप शब्द-योजना की अद्भुत प्रतिभा परिलक्षित होती है। भगवान् शंकर के वियोग में खिन्नचेता पार्वती के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का मार्मिक ढंग से सजीव चित्रण पाठकों के समक्ष उपस्थित करने वाला एक छन्द देखिए

याति स्विद्यति खिद्यति प्रलपति प्रत्येति रोमांचति,
ध्यायत्यप्यथ मूर्च्छति प्रपतति भ्राम्यत्यलं ताम्यति।
उच्चैर्निःश्वसिति प्रमीलति पुनः संकम्पते सीत्करो-
त्येवं शर्व! वियोगिनी न लभते कां कामवस्थां शिवा॥

—चतुर्थ सर्ग, तृतीय श्लोक

सारा श्लोक क्रियाओं की चमत्कारी शैली के प्रयोग से मुखरित है। यहाँ पर कितनी कुशलता से कवि ने वियोगिनी पार्वती की आन्तरिक व्यथा की कथा तथा विभिन्न संचारी भावों के क्रिया-कलाप प्रत्येक सार्थक क्रियाओं के माध्यम से सांकेति . भाषा में अभिव्यक्त किया है, यह अत्यन्त प्रशंसनीय और सराहनीय है। इस श्लोक में कवि का व्याकरणशास्त्र का पाण्डित्य भी स्पष्टरूपेण प्रकट होता है। इस तरह शब्दों को क्रिया रूप में परिणत करने की क्षमता अच्छे वैयाकरण के पास ही रहती है। क्रियाओं के चमत्कारी प्रयोग से पूर्ण इस तरह के श्लोक प्रस्तुत रागकाव्य में कई हैं, उनमें से एक श्लोक और उद्धृत कर रहा हूँ। शिव के वियोग में विकल पार्वती को एक क्षण एक कल्प के समान ज्ञात होता है, थोड़ा-सा भी आभूषण भार-सा लगता है, चन्द्रमा की शीतल किरणें आग की तरह सन्तापकारी प्रतीत होती हैं, कपूर का अणु-मात्र भी लेप विष की भाँति दीखता है, पुष्प की माला साँप की तरह ज्ञात होती है और कोकिल की कोमल वाणी मर्मस्थल को बेधती है। इस दशा में भगवान् शंकर ही पार्वती के विरहाग्नि को शान्त कर सकते हैं।

त्रुटिः कल्पत्यल्पाभरणमपि भारत्यनलति,
प्रसन्नःशुभ्रांशुर्गरति घनसारद्रवलवः।
प्रसूनस्रक् सर्पत्यथ पिकरुतं कुन्तति मृदु,
श्रुती तस्याः शम्भो! शमय विरहाग्निन्नगभुवः॥

—चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ २९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तुत काव्य में कवि ने प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध सभी अर्थालंकार और शब्दालंकारों का प्रयोग स्थल-स्थल पर किया है, किन्तु उनमें से कवि को अर्थालंकार, सांगरूपक अलंकार के प्रति अत्यधिक मोह और आकर्षण है। इस अलंकार का प्रयोग कवि ने इस काव्य में कई स्थलों पर बड़े सुन्दर ढंग से किया है। इनमें ऊँची कल्पनाओं से भरे हुए कुछ श्लोकों का आनन्द पाठकगण लें।

पार्वती, भगवान् शंकर के वियोग में इतनी विकल और विह्वल हो गयी थीं कि विवेक-विहीन होकर उन्हें दिन-रात रोना ही सूझता था। इसका परिणाम यह हुआ कि पार्वती के नयन से निरन्तर बहती हुई आँसू की धारा नदी के रूप में परिणत हो गयी। फिर क्या था, कवि ने उस नदी के तट को सांगरूपक के सहारे पार्वती के प्राणों की आहुति देकर वैदिक महायज्ञ की कठिन परिकल्पना कर ली।

वैतानाग्निरसौ वियोगदहनो वेदी ममोरः पिको,
होता यज्ववरो मधुः स शमिता कामः समित् केसरम्।
उद्गाता मधुपोऽत्र चन्दनरसः सर्पिःशिवप्रीतिकृद्,
मत्प्राणैः पशुभिर्भविष्यति महायज्ञोऽश्रुनद्यास्तटे॥

——सप्तम सर्ग, पृष्ठ ५३

प्रस्तुत श्लोक में कवि ने सांगरूपक अलंकार के प्रयोग के साथ अपने को पाठकों के समक्ष वैदिक यज्ञ-प्रक्रिया का मार्मिक ज्ञाता भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। अन्यथा यज्ञों में प्रयुक्त वैतानाग्नि, वेदी, होता, समित्, उद्गाता आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग काव्य में करना सभी कवियों के लिए सरल नहीं, अत्यन्त श्रमसाध्य है।

इस अलंकार के एक-दो उदाहरण और देखिए। किस तरह कवि अपनी प्रतिभा के बल पर उमा की नासिका को दो नली बन्दूक और उस पर विराजते मोती को उसकी गोली समझने लगता है। कवि की कठिन कल्पना-साध्य इस सूझ की प्रशंसा ही करनी चाहिए––

पाशौ ते श्रवणावपांगतरला दृग्भङ्ग्यस्ते शराः,
कोदण्डं भ्रुकुटीयुगं गिरिसुते नासापि ते नालिका।
सीमन्तस्तव भल्ल एष च भवद्धम्मिल्लकोऽप्युल्लसन्,
खड्गश्चण्ड्यसि तत्प्रसूनविशिखाऽनेकाऽऽयुधान्येकिका।

——तृतीय सर्ग, पृष्ठ २२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उमानासानाली तदुपहितमुक्ता च गुलिका,
वियोगोष्णश्वासोऽप्यनिलमिलनं यो मृगमदः।
स एवाऽर्कं भस्माऽयसनलकविस्फोटनकरम्,
मनोहंसं हंसि! स्मर मम कथं न द्रुततरम्॥

तृतीय सर्ग, पृष्ठ २३

प्रस्तुत कृति में कवि ने रोचकता लाने के लिए पौराणिक गाथाओं का भी प्रयोग किया है। पौराणिक जगत् में यह प्रसिद्धि है कि विष्णु भगवान् एक सहस्र फूलों से शंकर भगवान् को प्रसन्न करने के लिए प्रतिदिन पूजा-अर्चा किया करते थे। संयोग की बात है कि एक दिन एक कमल कम हो गया। इसका परिज्ञान विष्णु को पूजा के समय हुआ। पुष्पवाटिका भी वहाँ से दूर थी। इस कारण इतने कम समय में संख्या-पूर्ति के लिए दूसरे कमल के फूल की व्यवस्था हो भी नहीं सकती थी। विवश होकर शंकर के अनन्य भक्त भगवान् विष्णु ने तत्क्षण अपना नेत्रकमल भगवान् के चरणों में अर्पित कर दिया। आशुतोष भगवान् शंकर विष्णु के इस कार्य से अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसी समय सुदर्शन चक्र विष्णु को भेंट कर दिया, जो आज भी तीन लोक की रक्षा करने के लिए भगवान् विष्णु के हाथ में विराजमान है। इस पौराणिक कथा से अत्यन्त अनुप्राणित इस रागकाव्य का एक श्लोक पढ़िए––

उत्कीर्य स्वदृशन्नखेन सहसा सम्पूरयत्यच्युते,
साहस्रं सकृदूनमम्बुजबलिं शम्भोः सपर्याऽर्थकम्।
आश्चर्यं यदभूदुमामनसि तद्भूयोऽपि संवर्द्धयन्,
सद्यः श्रीशदृगर्पणात् दिशतु वः श्रीशंकरः सम्पदम्॥––नवम सर्ग, पृष्ठ ६६

इस श्लोक का अर्थ जानने के लिए पाठक को उपर्युक्त पौराणिक गाथाओं से परिपूर्णरूपेण परिचित होना आवश्यक है। इस पौराणिक ज्ञान के बिना इसका अर्थ समझना कठिन है। यह श्लोक भी पुष्पदन्तकृत महिम्नःस्तोत्र के एक श्लोक से प्रभावित है––

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन्नेत्रकमलम्।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा,
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर! जागर्ति जगताम्॥

––महिम्नःस्तोत्र, श्लोक १९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मध्यकाल में संस्कृत में समस्यापूर्ति की परम्परा चल पड़ी थी। राज-दरबार में होने वाले कवि-सम्मेलनों में समस्या-पूर्ति कवियों के लिए अपने वैदुष्य और काव्यसर्जन विषयक प्रतिभा के प्रकाशन तथा प्रदर्शन का एक साधन थी। समस्यापूर्ति से सम्बन्धित इस प्रकार के रोचक और मनमोहक प्रसंग संस्कृत की सुप्रसिद्ध पुस्तक 'भोजप्रबन्ध' में एक नहीं अनेक हैं। प्रस्तुत रागकाव्य भी समस्यापूर्ति की इस परम्परा से अछूता नहीं है। अवसर मिलने पर कवि ने कथा-योजक छन्दों में बड़ी चतुरता से चामत्कारिक शैली में समस्या-पूर्ति-परम्परा का द्योतक छन्द निर्माण कर दिया। भगवान् शंकर पार्वती से कह रहे हैं—

श्यामा त्वं वयसा ब्रवीषि मनसा श्यामं च मां सुन्दरि !
श्यामा रात्रिरियंन्निकुंजभवने श्यामन्तमः सर्वतः।
श्यामन्तीरमिवन्तृणैर्द्युसरितः श्यामास्तमालैर्दिशः,
श्यामः कोऽपि रसः करोति मयि तत् 'शार्दूलविक्रीडितम्'।।

—दशम सर्ग, पृष्ठ ७१

कवि ने इस श्लोक में 'शार्दूलविक्रीडितम्' को समस्या मानकर उसी छन्द में सुन्दर ढंग से समस्या-पूर्ति-परम्परा का निर्वाह किया है। प्रस्तुत श्लोक में कवि द्वारा कुशलतापूर्वक पुनरावृत्तिमूलक श्याम शब्द का प्रयोग पाठकों के मन में श्लोक पढ़ते समय अपूर्व आनन्द का सर्जन करता है।

कवि को अलंकारों में जैसे सांगरूपक अलंकार अत्यधिक प्रिय है, उसी तरह छन्दों में 'शार्दूलविक्रीडित' से उसे विशेष प्रेम है। इसी से इस रागकाव्य में सांगरूपक अलंकार के समान कवि ने 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द का प्रयोग सबसे अधिक किया है। उसके बाद शिखरिणी छन्द का प्रयोग पाया जाता है। रामभट्ट को इस काव्य में स्वर, ताल, लयबद्ध ललित गीत लिखने में जितनी सफलता मिली है, उतनी ही सफलता ओजस्वी भाषा में सशक्त छन्द लिखने में प्राप्त हुई है।

मेरी राय में हर दृष्टि से कवि की यह सफल कृति है। एक दिन इसे भी जयदेव के 'गीतगोविन्द' के समान पण्डित-समाज में आदर और सम्मान प्राप्त हो जायेगा।

'गीतगिरीशम्' के प्रस्तुत संस्करण के प्रकाशन में आचार्यप्रवर श्रीतारिणीश झा का विशेष योगदान रहा है। उन्होंने प्रूफादि के संशोधन एवं अनेक स्थलों पर पाठ एवं अर्थ के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सम्बन्ध में परामर्श देकर जो सहयोग दिया है, उसके लिए आभारी हूँ। जिन विद्वानों एवं सहयोगियों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में गीतगिरीशम् के सम्पादन एवं प्रकाशन में योग दिया है, उनके प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करते हुए प्रसन्नता हो रही है।

विश्वास है 'गीतगिरीशम्' जैसे राग-काव्य के लालित्य का आस्वाद पाकर रसिक पाठकवृन्द आह्लादित एवं प्रमुदित होंगे।

प्रभात शास्त्री

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

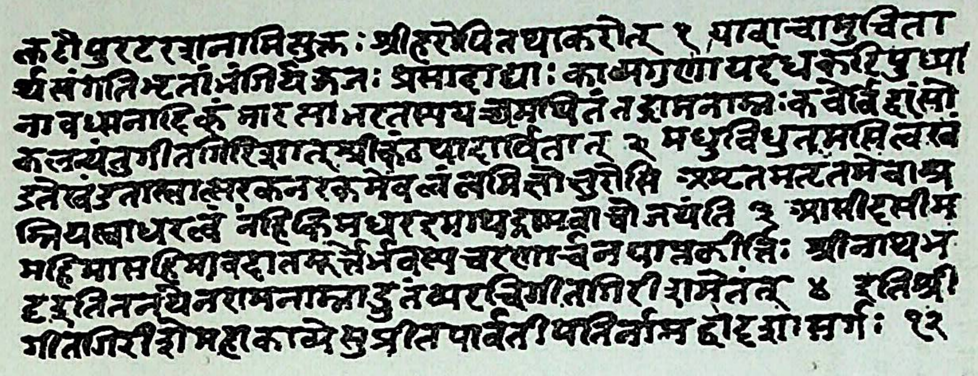
कटौ पुरटरत्नानामिसुरू: श्रीहरोऽपि तथाकरोत् १ पावान्त्वामुचिता
र्थसंगतिभृतां गिरिजे कृतः प्रसादाद्या: काम्यगुणा यदर्थकारि पुण्या
नाव धमनाद्दिकं मारस्ता भरतस्य चमार्पितं नङ्गामनाम्ना: कवेर्वि हासो
कलन्यं तु गीतगिरिजात् श्रीकृष्णपार्वतात् २ मधुविधुतमसि त्वरव
उत्ते खंड तासां स्मरकेन रुक्मेव त्वं नमितो चुतोऽसि स्मृतमत्तमेवाग्र
नियमाधरत्वं नहि किमधरं स्माय दूष्म वा वो जयंति ३ आसीदसीम
महिमा सहिमावदातमूर्तेर्भवस्य चरणार्चनपात्रकीर्तिः श्रीनाथभ
ट इति तनयेन रामनाम्ना कुतंधर विगीततिरी रामेतंत् ४ इति श्री
गीतगिरीशे महाकाव्ये सुप्रीतपार्वतीपतिर्नाम द्वादशः सर्गः १२

[भाण्डारकरशोधसंस्थानपुण्यपत्तनस्थहस्तलिखितपुस्तकस्यान्तिमपृष्ठस्य प्रतिच्छविः]

भाण्डारकर शोध संस्थान, पूना में प्राप्त हस्तलिखित पुस्तक के अन्तिम पृष्ठ की प्रतिच्छवि

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्द्धनारीश्वर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

। श्रीभवानीशङ्कराभ्यान्नमः ।

॥ अथ गीतगिरीशं प्रारभ्यते ॥

प्रथमः सर्गः

कर्षन्ताविंतरेतरस्य मनसी बद्ध्वेव रज्ज्वेव ते,
[1]सम्मोहन्ददतावथाऽशुसुधयाऽऽसिच्येव हर्षप्रदौ।
किञ्चित्सङ्कुचितौ पुनर्विकसितौ श्वेतौ शिती लोहितौ,
पातामीश्वरयोस्तरङ्गतरलौ लोकान् कटाक्षावुभौ ॥ १

मानो रज्जुबद्ध एक दूसरे के मन को खींचते हुए, मोहयुक्त बनाते हुए, मानो अमृत से सींचकर परस्पर के हृदय को हर्षित करते हुए, कुछ संकुचित तथा (दर्शनेच्छा से) फिर विकसित, श्वेत, काले और रक्तवर्ण के भवानी शंकर के तरंगित एवं चंचल नेत्र संसार की रक्षा करें। १

हर्षं श्रीहर्षनामा रचयति वचनैरद्भुतार्थैर्दुरूहै-
र्गम्भीरैर्भावतो भारविरपि तनुते चित्तपद्मप्रबोधम्।
वाग्गुम्फैः [2]सप्रसादैर्मृदुगदितपदैः कालिदासः प्रसीद-
त्युच्चैर्लोकेषु तेषामहमपि चरणाम्भोजभृङ्गोऽस्मि रामः ॥ २

श्रीहर्षकवि अपने अद्भुतार्थ वचनों से हर्ष उत्पन्न करते हैं। गम्भीर भावों से महाकवि भारवि भी चित्त-कमल को विकसित करते हैं। प्रसाद गुणवाले मृदु पदोंवाली कविता से महाकवि कालिदास प्रसन्न करते हैं, इन सबके चरण-कमलों का मैं रामभट्ट भ्रमर हूँ अर्थात् उक्त कवियों को प्रणाम करता हूँ। २

---

१. अथ्रु ख०। २. सप्रमोदैः क०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हर्यक्षं कपिरनुवर्तते यथाऽयम्,
खद्योतो रविमपि [1]निर्द्धनो यथाऽऽढ्यम्।
औत्सुक्यादहमधुना तथाऽनुकुर्वे,
ललित्यं कविजयदेवभारतीनाम्॥ ३

जिस प्रकार बन्दर सिंह का, खद्योत सूर्य का एवं निर्धन धनी का अनुकरण करता है, वैसे ही मैं भी उत्सुकतावश इस समय महाकवि गीतगोविन्दकार जयदेव की वाणी का अनुकरण करता हूँ। ३

कर्पूरपूरगौरीगौरीपतिगीतिसन्ततौ चेतः।
मम निर्मलयतु वाणी ह्रीणा वीणाऽपि यद्गिरो रणति। ४

कपूर के ढेर की तरह श्वेत पार्वती और महादेव के गीत-विस्तार में (लगे हुए) मेरे चित्त को सरस्वती निर्मल कर दें, जिनकी वाणी को वीणा भी लज्जित होकर ध्वनित करती है। ४

ललितरागेण गीयते

गजवरवदनविभूषित ! मदरूषित ! ए !
मधुकरगायकगीत ! सुखय गणाऽधिपते ! १

गजराज के मुख से शोभित ! मदस्रावी ! हे मधुकर रूपी गायकों द्वारा गाये गये ! गणाधिपति ! तुम हमें सुख प्रदान करो। १

चन्दनमृगमदचर्चित ! कुसुमार्चित ! ए !
सिन्दूरारुणभाल ! सुखय गणाऽधिपते !

चन्दन और कस्तूरी से लिप्त ! पुष्पों से पूजित ! सिन्दूर से लाल मस्तक वाले ! गणेश जी ! सुख दीजिए। २

---

१. धनाढ्यम् ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

मुखमोदक ! घृतमोदक ! मतिशोधक ! ए !
विघ्नवनाऽनलरूप ! सुखय गणाऽधिपते ! ३

हे मुख में लड्डू रखनेवाले ! हाथ में मोदकवाले ! बुद्धि शुद्ध करनेवाले ! विघ्नरूपी वन के लिए अग्नि रूप ! गणेश जी ! सुख दीजिए। ३

एकदन्त ! रिपुखण्डन ! कृतमण्डन ! ए !
पुष्करपुष्करमाल ! सुखय गणाऽधिपते ! ४

हे एकदन्त ! हे रिपुनाशक ! हे भूषणालंकृत ! हे कमलों की माला पहने हुए ! गणनायक ! हमें सुख दीजिए। ४

[1]भृतकङ्कणमणिनूपुर ! सुखगोपुर ! ए !
अघपर्वतशतवज्र ! सुखय गणाऽधिपते ! ५

हे कंकण और मणि के नूपुर धारण किये हुए ! सुख के द्वार ! पापों के पर्वत के लिए सौ वज्र स्वरूप ! गणपते ! सुख दीजिए। ५

ललित राग

(टिप्पणी—इस राग में "ए" "हे" का पर्यायवाची, सम्बोधन रूप प्रत्येक पद के अंत में आता है।)

शिखिवाहनलघुसोदर ! लम्बोदर ! ए !
गौरीनन्दन ! देव ! सुखय गणाऽधिपते ! ६

कार्तिकेय के छोटे भाई ! लम्बोदर! सुख दीजिए। गौरीनन्दन ! देव ! सुख दीजिए। ६

मूषकवाहनमण्डित ! रणपण्डित ! ए !
खण्डितदानवमान ! सुखय गुणाऽधिपते ! ७

मूषकवाहन से शोभित ! युद्धकुशल ! दैत्यों का मान मर्दन करनेवाले ! हे गणपति ! सुख दीजिए। ७

---

१. नृत ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रामकवीज्यपदाम्बुज ! साऽङ्गदभुज ! ए !
कविकुलकाव्यनिदान ! मुखय गणाऽधिपते ! ८

कवि द्वारा पूज्य चरण-कमल ! अंगद सहित भुजावाले ! कवि-समूह के काव्यों के कारणभूत ! हे गणेश जी ! सुख दीजिए। ८

आस्यैः पञ्चभिराचुचुम्ब दशभिर्दोभिः परिस्पृष्टवान्[1],
नेत्रैरैक्षत पञ्चभिर्दशभिरप्येकां भवानीं भवः।
वक्षस्तस्य तदक्षमं गिरिसुताहाराऽनुबिम्बैरतदा,
कायव्यूहमिव स्फुटं विरचयद् भूयात्सुभव्याय वः॥५

भगवान् शिव ने पाँच मुखों से पार्वती का चुम्बन किया, दस भुजाओं से आलिगन किया, पाँच तथा दस नेत्रों के द्वारा (पाँच नेत्र मस्तक के, दस नेत्र मुख के) एक पार्वती को देखा। उस समय महादेव का वक्षःस्थल अक्षम था, क्योंकि पार्वती के हारों में उसका प्रतिविम्ब पड़ रहा था, जिससे शरीर का समूह स्पष्ट हो रहा था, ऐसा वक्षःस्थल तुम सबका कल्याण करे। ५

मालवगौडीरागेण गीयते

वहसि शिरसि सुभगे[2] सकलं जनभारम्,
श्रमजलवरहितमस्वेदमपारम्[3] ।
शङ्कर ! धृतधरणीरूप ! विरचय शर्म जने॥ १ ध्रुवपदम्

मालवगौडी राग से गेय

हे शंकर ! तुम सुन्दर सिर पर अपार जन-समूह का भार गंगा के रूप में धारण कर रहे हो। जिसमें कुछ भी श्रम नहीं होता, फलतः पसीना नहीं छूटता। इस प्रकार तुम धरती का रूप धारण किये हुए हो। आप हमें सुख दीजिए। १

---

१. परिष्वक्तवान् ख०। २. सुभगो क०। ३. अत्र 'श्रमजललव' पाठो मयाऽनुमीयते ख० पुस्तकेऽपि श्रमजलव इति पाठोऽस्ति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्षपयसि निजनिवहे विहरज्जनपापम्,
विनकरदहनविहितमपि तापम्।
शङ्कर! धृतसलिलशरीर! विरचय शर्म जने॥ २

हे शंकर! आप अपने समुदाय में विहार करते हुए लोगों का पाप दूर करते हो, सूर्य और अग्नि का ताप शान्त करते हो। तुम इस प्रकार सलिल स्वरूप हो। आप हमें सुख प्रदान कीजिए।२

प्रसरसि भुवनतले कृततिमिरविनाशम्,
अत्सि च [1]हुतमपि हेतिविलासम्।
शङ्कर! धृतहुतवहरूप! विरचय शर्म जने॥ ३

हे शंकर! तुम भूतल पर अंधकार का नाश करके फैलते हो तथा ज्वाला का विलास करते हुए, हवन की गयी वस्तुओं का भक्षण करते हो। इस प्रकार तुम वह्नि रूप हो। हमें सुख दीजिए।३

चरसि जगति वितते बहिरन्तरपावन!
पवनविजितखगपतिपरिधावन!
शङ्कर! धृतमारुतरूप! परिचय शर्म जने॥ ४

हे शंकर! वायुरूप से बाहर-भीतर पवित्र करने वाले आप विस्तृत संसार में विचरण करते हैं। वायुरूप से आप गरुड़ के वेग को भी तिरस्कृत करते हैं। इस प्रकार वायु का रूप धारण करने वाले हे शिव! आप हमारा दुःख दूर करें।४

रविशशिकान्तिरम्यशिशुमारम्।
त्वयि विचरति सत्वरतरचारम्।
शङ्कर! धृतगगनशरीर! विरचय शर्म जने॥ ५

हे शंकर! चन्द्र और सूर्य की कान्ति से सुन्दर शिशुमार चक्र ग्रह में तुम में बड़ी तेजी से गति कर रहा है। ! इस प्रकार आप आकाश स्वरूप हैं। हमें दुःख रहित कीजिए।५

---

१. द्रुत क०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मुञ्चसि निजसमये सलिलं लसदोघम्,
सङ्ग्रहमपि रचयसि च न मोघम्।
शङ्कर! धृतदिनकररूप! विरचय शर्म जने॥ ६

हे शंकर! आप सूर्य के रूप में अपने समय में जलराशि छोड़ते हैं और अमोघ जल का संचय भी करते हैं। इस प्रकार आप सूर्यरूप हैं। हमें सुख दीजिए।६

निखिलौषधिनिकरे चिरममृतमुदारम्,
वर्षसि निशि रुचिरं शुचिसारम्।
शङ्कर! धृतहिमकररूप! विरचय शर्म जने॥ ७

हे शंकर! समस्त ओषधियों की राशि पर उदार होकर रात्रि में देर तक सुभग एवं पवित्र वस्तुओं के साररूप अमृत की वर्षा करते हो। इस प्रकार आप चन्द्ररूप हो। आप हमें सुख दीजिए।७

वेदवादिवितते रुचिरुचिता यागे,
तव कल्पितविविधाऽमरभागे।
शङ्कर! धृतयज्ञशरीर! विरचय शर्म जने॥ ८

हे शंकर! वेदानुयायियों द्वारा रचे गये यज्ञ में आपकी रुचि होना उचित ही है। उस यज्ञ में आप देवों को भाग प्रदान करते हो। इस प्रकार आप यज्ञ स्वरूप हो। आप हमारे कष्ट दूर कीजिए।८

[1]श्रीकविरामकृते मधुमधुरे गीते,
मुदमुद्वह सदयश्रुतिनीते।
शङ्कर! विधृताऽष्टशरीर! विरचय शर्म जमे॥ ९

हे शंकर! कविवर रामभट्ट कृत इस मधु जैसे मधुर गीत से हे दयालो! आप आनन्द लीजिए। इस प्रकार आपका अष्टमूर्ति होना सिद्ध है। आप हमें सुख दीजिए।९

---

१. कविरामतते ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोकान् धारयते मलान् क्षपयते पाकाऽऽदिकं कुर्वते,
तिर्यक् सञ्चरते विभुत्वमजते तापक्षयं तन्वते।
विश्वं स्वीयकराऽमृतै रचयते साऽऽह्लादमेवन्मखम्,
द्राग् विस्तारयतेऽष्टविग्रहभृते तुभ्यन्नमः शम्भवे ॥ ६

आप लोकों को धारण करने से पृथ्वी रूप हो। मल दूर करने से जल रूप हो। पाकादि कार्य करने से अग्नि रूप हो। टेढ़ी गति रखने से वायु रूप हो। विभु होने से आकाश रूप हो। गर्मी देने से सूर्य रूप हो। संसार को अपनी किरणों से आह्लादित करने से चन्द्र रूप हो, यज्ञ का विस्तार करने से यजमान रूप हो। इस प्रकार अष्टमूर्ति धारण करने वाले आप शंभु को नमस्कार है।६

निबध्नन् मुञ्चंश्च प्रतिघटिकपर्दन्निजमिमम्,
द्युनद्याः स्पर्शः किं कितव ! पुरतो मेऽपलपसि।
इति व्याहृत्येशं प्रति गतवतीं दारुविपिनम्,
सरोषां श्रीगौरीं सविनयमथोवाच विजया ॥ ७

हे शंकर ! आप प्रतिक्षण अपने जटाजूट को खोलते और बाँधते हो, इस प्रकार गंगा नामक नायिका का स्पर्श करते हुए भी मेरे सामने बहाना बनाकर निषेध कर रहे हो। यों कहकर रुष्ट होकर जो दारुवन में प्रविष्ट हो गयी, ऐसी पार्वती से उसकी सखी विनयपूर्वक कहने लगी।७

विषधरगरलाऽनलाऽऽकुलानाम्,
मलयवनीघनचन्दनाऽनिलानाम् ।
तव वपुरसहं शिरीषकल्पम्,
शिवमवलोकय तल्लसद्वसन्ते ॥ ८

हे पार्वती ! इस दारुवन में सर्पों के विष की ज्वालाओं से व्याप्त, मलयवन के सुगन्धित वायु को तुम्हारा शिरीष सम कोमल शरीर सहन नहीं कर सकता, अतः हे पार्वती ! तुम वसन्त युक्त वन में अपना कल्याण समझो। या शिव जी के ही पास जाकर शरण लो, अपना मान परित्याग कर दो।८

---

२. तस्याः क०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वसन्तरागेण गीयते

वसन्तराग में गेय

सरसरसालकुसुममञ्जरिकामधुपिञ्जरितदिगन्ते,
स्मरसृणिकिंशुकलग्नविरहिजनकालखण्डनिभवृन्ते । १
विहरति पुररिपुरिह मधुमासे ।
रसयति सुररमणीरधिकं प्रतितरुकृतकुसुमविकासे ।। ध्रुवपदम्

सरस आम्रमंजरी के पराग से पीले बने दिगन्तवाले और काम के अंकुश रूप तथा विरही जनों की कलेजी जैसे पलाश-पुष्पों में लगी टहनियोंवाले मधुमास में शिव जी विहार करते हुए देवांगनाओं को प्रत्येक वृक्ष के नीचे सुख प्रदान कर रहे हैं।१

सरसिजपत्रनिहितमदनाऽक्षरनिकरोपमितमिलिन्दे ।
कुण्ठितयुवतीहठकलकण्ठरवाऽहितहितयुववृन्दे ।। २
विहरति० ।

कमलपत्रों पर भौंरे काम के अक्षरों जैसे लगते हैं, जिसमें कोयल की कूक से दिङ्मूढ युवतियों द्वारा युवाओं के प्रति बरवश ही आत्म-समर्पण किया जा रहा है। ऐसे मधुमास में शिव विहार कर रहे हैं।२

कुसुमशरस्मिततुल्यमल्लिका सक्षणदक्षिणवाते ।
विपिनसमृद्धितिलकतिलकद्रुमसूनजनितजनशाते ।। ३
विहरति० ।

कामदेव के स्मित के समान मल्लिका के फूल से मलय पवन बहार दे रहा है। कानन की समृद्धिरूपी नायिका के तिलक स्वरूप तिलक वृक्ष के पुष्प से विरही जन मारे जा रहे हैं। ऐसे वसन्त में शिव जी विहार करते हैं।३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अलिपतहिमकल्पितजनशर्मणि सरसोलसदरविन्दे।
लोकितरजनिविशोकितकोकविलोकितपरमाऽऽनन्दे ॥४
विहरति०।

हिम के कम होने से मनुष्य सुख प्राप्त कर रहे हैं। तालाब में कमलों पर भ्रमर बैठे हैं। रात्रि के आ जाने से चकवा-युगल परमानन्द पा रहे हैं, ऐसे वसन्त में शिव विहार-तत्पर हैं।४

विरहिक्रकचायितकेतकमुखकृतबहुरजोनिधाने ।
अरुणाऽशोककुसुममयमदनज्वलदनलाऽस्त्रविताने ॥५
विहरति०।

विरही जनों के लिए आरे के समान केतकी के फूल से गिर कर धूल का ढेर लग गया है। लाल-लाल अशोक पुष्पावलि रूपी कामास्त्र फैले हुए हैं, तब शिव का विहार हो रहा है।५

फुल्लतमालनिवहतिमिरापहकृतकुरुबकसुमदीपे ।
केसरबकुलगन्धबन्धुरे ह्रीनतविकुसुमनीपे ॥६
विहरति०।

खिले तमाल के वृक्षों के अन्धकार को नष्ट करने के लिए कुरवक (लालफूल) फूल दीपक की लौ जैसे दिखायी पड़ रहे हैं। तथा केसर, मौलसिरी के फूलों की गन्ध से सुन्दर एवं फूल रहित वन्धूकवृक्ष वाले वसन्त में शिव जी विहार कर रहे हैं।६

ललनागलवलयितभुजमुन्मदमदनभ्रमितभुजङ्गे ।
दुस्सहविरहदहनविनिपातितपृथुतरपथिकपतङ्गे ॥७
विहरति०।

स्त्रियों के गलों में हाथ डाले हुए उन्मत्त कामी जहाँ घूम रहे हैं तथा विरहाग्नि से जहाँ पथिक पतंग जल रहे हैं, ऐसे वसन्त में शिव जी विहार कर रहे हैं।७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकविरामकथितमधुमाधवसमयसदृशवनरूपम् ।
शमयतु कलिशमलं सुरपरिवृढवरदरतेरनुरूपम् ॥ ८
विहरति० ।

श्रीरामभट्ट द्वारा वर्णित वसन्त का स्वरूप, जो कि देवताओं को ढृढ वर देने वाले (शिव) की रति-क्रीड़ा के अनुरूप है, कलियुग के पापों को दूर करे।८

मन्दाऽऽन्दोलितमालतीव्रततयो माकन्दवृन्दाऽन्तर-
भ्रान्तिभ्रष्टजवाः सुपर्वतटिनीपूरप्लवाऽम्बुप्लुताः।
कान्दर्पीमपकीर्तिमेव विरहिव्यापादनेनाऽज्जिताम्,
भृङ्गालीं भ्रमयन्त ईरितमदा वान्त्यद्भुता मारुताः ॥ ९

मालती की बेल को धीरे-धीरे हिलाने वाली, आम्र समूह के बीच घूमने से वेग को छोड़ने वाली मन्दाकिनी के जल प्रवाह में लोटने वाली, विरहिगण के हनन से कामदेव की अपकीर्ति तुल्य भ्रमर पंक्ति को प्रेरित करने वाली वायु सब ओर चल रही है।९

उद्धूता वनमरुता मलीमसाऽलिश्रेणी-
युवककनकनिभा परागपङ्क्तिः। १०
पान्थानान्दहति मनांसि चन्दनाऽद्रे-
रायाता भुजगगराऽग्निजेव कीला[1]॥ ११

वन की वायु से उड़ाये गये भौरों से घिरे युवकों के ऊपर परागपंक्ति से पीतिमा आ गयी है। तथा मलय पर्वत की ओर से आने वाली सर्पों के विष से लगी अग्नि की लपटों जैसे वायु चल रही है।१०-११

विविधैर्विबुधवधूनामस्तोकैः कामविव्वोकैः।
विस्मितमुपदर्श्येशं गिरमूचे सहचरी गिरिजाम् ॥ १२

देवांगनाओं की विविध प्रकार की निरन्तर कामजन्य चेष्टाओं को देख कर मुस्कराते हुए शिव जी को दिखला कर पार्वती की सहचरी पार्वती से कहने लगी।१२

---

१. पुर क०। २. युग्मकमिदम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुर्जरीरागेण गीयते
गुर्जरी राग से गाइए

ऊरुद्वयजितरम्भा रम्भा कृतशङ्करपरिरम्भा ।
प्रीणयतीशमनङ्गनिदेशं हृदि दधती गतदम्भा ।। १

विशेष : इस कविता में अप्सराओं का शंकर के प्रति अनुराग वर्णित है। अपनी ऊरुओं से कदलीस्तम्भ को तिरस्कृत करने वाली रम्भा शंकर भगवान् के आलिंगन सुख को प्राप्त कर रही है तथा इस प्रकार वह भगवान् शिव को प्रसन्न कर रही है एवं कामदेव की आज्ञा का पालन कर रही है।१

हर इह विबुधवधूविसरे कलावति विहरति चतुरतरे।। ध्रुवम्
इह विधुवपुषि वसति सुरमादकममृतन्तदिति वदन्ती।
चुम्बति शम्भोरलिकन्धन्या सहजन्या विहसन्ती।। २
हर इह० ।

यहाँ देवांगनाओं के समूह में कलावान् एवं अत्यन्त चतुर महादेव के विहार करने पर—

इस विधुयुक्त शरीर वाले महादेव के मस्तक में वह अमृत विद्यमान है जो वर्णनातीत है—यह कहती हुई धन्य सहजन्या महादेव के मस्तक का चुंवन कर रही है।२

पटुतरपाठविकटपठितिस्फुटताण्डवपण्डितमेषा ।
मदयति मृदुमृदुलास्यरसेन हरं हरिणी वरवेषा।। ३
हर इह० ।

स्पष्ट रूप से पाठ के विकट पढ़ने के द्वारा अर्थात् गान के साथ-साथ ताण्डव नृत्य में पण्डित महादेव को धीरे-धीरे लास्य रस में मग्न करके यह हरिणी नाम की देवांगना उत्तम वेश से सुसज्जित होकर शिव को उन्मत्त वना रही है।३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साचीकृत्य मुखन्तु घृताची पुलकाऽचिततनुभागा।
मिश्रयतीशकटाक्षितमात्मकटाक्षशतेन सरागा ॥४
हर इह०।

यह घृताची नाम की देवांगना पुलकितगात्र होकर तथा मुख को धनुष की तरह बनाकर महादेव की ओर कटाक्ष करती हुई उनके कटाक्षों का पात्र बन रही है।४

सुरथानखपदततिरतिधवले वपुषि भवस्य सुजाता।
स्फटिकपट्टिकातलकलिताक्षरमदनकीर्तिरिव भाता॥५
हर इह०।

सुरथा नामक सुरांगना के द्वारा महादेव के गोरे शरीर पर उभरी हुई नखक्षतावली ऐसी प्रतीत होती है जैसे स्फटिक-शिला पर कामदेव की कीर्ति अक्षरों में उत्कीर्ण की गयी हो।५

मेनकयाऽपि कयाऽपि विलोकनभङ्ग्या भगवति भर्गे।
रतिरुदपादि मुदाऽऽकुलया वरयाऽमररमणीवर्गे॥६
हर इह०।

देवांगनाओं में अग्रणी मेनका ने अपने कटाक्षों द्वारा हर्षाकुल होकर महादेव के हृदय में रति को अंकुरित कर दिया।६

विहरन्तीषु रतिप्रतिबिम्बितनूषु वृषध्वजचित्तम्।
मुञ्चति सुरसरितन्न कृपण इव कृच्छ्रोपनतं वित्तम्॥७
हर इह०।

रति के समान शरीर वाली देवांगनाओं के विहार को देख कर भी महादेव का चित्त गंगा देवी को कृपण के धन के समान समेटे रहता है, अर्थात् अडिग ही रहता है।७

त्रिनयनकेलिकलाकलगीतं 'श्रवणपथं प्रति नीतम्।
श्रीकविराममुखात्समुदीतं पातु जनं भवभीतम्॥८
हर इह०।

महादेव की केलि से सम्बन्धित यह गीत हम लोग अपने कानों से सुनें तो वे सांसारिक भय का निवारण करते हैं, यह रामकवि का दृढ निश्चय है।८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

दृप्यद्दर्पककेलिकोमलकलावज्ञातवात्स्यायनः,
स्वर्वेश्याशतचक्रवालमिलितः कर्पूरपूरद्युतिः।
स्वर्धुन्युत्तररोधसि स्मरसुधादुग्धोदधिः पार्वति!
क्रीडत्यत्र स कोऽपि पर्वततटीपाटीरवाटीविटः ॥ १३

इति

सर्गोपसंहार वाक्य

हे पार्वति! कन्दर्प-केलि की कलाओं के परिज्ञान में वात्स्यायन को भी मात कर देने वाले, सैकड़ों अप्सराओं से आवेष्टित, कर्पूरगौर, पर्वत के किनारे की चन्दनवीथी में रमण करने वाले तथा कन्दर्प, अमृत और क्षीरसागर के समान धवल कोई देव आकाश-गंगा के उत्तरी तट पर क्रीड़ा कर रहे हैं (तुम वहाँ सँभल कर जाना—यह आशय है)।१३

जायास्तां जयकारिणोऽद्य कुमुदाऽम्भोजप्रमोदप्रदे,
ते नेत्रे नितरां चराऽचरगुरोर्गौरीपतेः पावने ।
याभ्यामर्द्धविबोधितैः सकुमुदैरम्भोजनुर्भिः सदाऽ-
पर्णाचेतसि लुप्यते न रजनीघस्रद्वये संशयः ॥ १४

इति श्रीगीतगिरीशे[1] वसन्तविलासो नाम
प्रथमः सर्गः। १

हमें यह सन्देह है कि भक्तों की विजय करने वाले महादेव के वे नेत्र जो कुमुद और कमलों को (सूर्य॰चन्द्र रूप होने से) विकसित करते हैं तथा जल-संभव हैं वे रात्रि में भगवती जगदम्बा के चित्त में विलीन हो जाते हैं या नहीं—यह सन्देह हमें उनके अर्धविकसित रूप को देखकर होता है (वे क्रमशः लीन हो जाते हैं, यह आशय है)।१४

वसन्तविलासो नाम
प्रथम सर्गः।

---

१. महाकाव्ये इत्यधिकं पदम् ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection. Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.

द्वितीयः सर्गः

परावृत्त्या प्रमुञ्चन्ती मानिनी मानगौरवम् ।
गौरी सहचरीमूचे चिन्तयन्ती त्रिलोचनम् ॥ १

मुख-परावर्तन से मान के गौरव को छोड़ती हुई मानवती पार्वती अपनी सखी से मन में महादेव का ध्यान करती हुई बोलीं।१

रामगिरिरागेण गीयते

रामगिरि नामक राग में ये पद गाये गये हैं:—

केवलकररयविरणितवीणाकर्णनसज्जितकर्णम् ।
ग्रामसमुच्छलदच्छनतानतविश्रुतिसन्मुखवर्णम् ॥ १
मानसमसमशरज्वरदूनं स्मरति वरं वरदं मम नूनम् ॥ ध्रुवपदम्

हे सखि ! आनन्द में केवल विस्वर हाथों से वजाई वीणा के सुनने में दत्त-चित्त एवं स्वरग्रामों के उच्छलने के साथ स्वरों के आरोहावरोह के सुनते ही जिनका वर्ण (स्वरूप) सम्मुख आ जाता है, ऐसे कामज्वर-संतप्त वरदायक महादेव को मेरा मन याद कर रहा है।१

शुचिरससरसीलघुनौकानिभचन्द्रकलाऽधिकरागम् ।
हिमकरदिनकरतदितरलोचनकूणितजनिताऽधिकरागम् ॥ २
मानस० ।

पवित्र जलयुक्त सरसी में छोटी-सी डोंगी जैसी चन्द्रकला से अधिक अनुराग रखने वाले तथा सूर्य-चन्द्र-अग्नि-रूपी नेत्रों के प्रान्तभागावलोकन से मेरे हृदय को रागावेश में भरनेवाले शिव को मेरा मन याद कर रहा है।२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेचकतासृगमदहररसभूपतिमिव घननीलम् ।
गरललवं गलमिलितन्दधतं स्वमिवोपकरणशीलम् ॥ ३
मानस० ।

कालिमा से कस्तूरी का मद हरण करनेवाले रसायन के समान, गहरे नीले, गले में संयुक्त गरल के कण को मानों अपने उपकरणशील (आभूषण) को धारण करने वाले शिव को मेरा मन याद कर रहा है।३

गङ्गातुङ्गतरङ्गनिरर्गलगर्वहरणकचभारम् ।
अभयदभुजभजनैकपरायणजनजनिताऽध्योरणिहारम् ॥ ४
मानस० ।

जिनका जटाजूट गंगा की तुंग तरंगों की उत्तालता के गर्व का विनाशक है, एवं जिसकी जटा की लटें अभयदान करनेवाले भुजद्वय को शरणागत भक्तों के लिए हार-परम्परा के समान हैं, ऐसे शिव को मेरा मन याद कर रहा है।४

स्मितलवजितरतिसुरयुवतीशततरुणिमसफलनरूपम् ।
एवमपि भ्रुकुटीविकटायितविजितमदनमृदुभूपम् ॥ ५
मानस० ।

स्मितलव से ही रति एवं सैकड़ों देवाङ्गनाओं के तारुण्य को जीतने से सफल स्वरूप, भीषण भृकुटि से कोमल, कामभूपति को जीतनेवाले शिव को मेरा मन याद कर रहा है।५

शुकपिकमधुकरमधुमधुरध्वनिरध्वनि यस्य जिहीते[1]।
स्थितमलकोपवने पवनेन सुशीतलतामभिनीते ॥ ६
मानस० ।

पवन से शीतल अलकापुरी के उपवन में स्थित जिस महादेव के मार्ग में (दोनों तरफ) कोयल, तोते और भौंरों की ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही है, ऐसे महादेव को मेरा मन याद कर रहा है।६

१. ओहाङ् (गतौ) धातोः रूपम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संततविततवासनारसवशचित्तगतं जनमेनम् ।
वीक्ष्य समक्षमिव क्षणहृष्यदनिद्रनिजेन्द्रियमेनम्* ॥ ७
मानस० ।

निरन्तर शिव विषयक रति वासना से वशीकृत मुझे सामने देखकर जो शिव थोड़ी देर के लिए विचलितचित्त होकर भी फिर निजेन्द्रिय शक्ति के अधीश्वर रहे ऐसे शिव को मेरा मन याद कर रहा है।७

श्रीकविरामभणितवृषभध्वजरूपमघौघविनाशम् ।
ध्यायते[1] जितमरुतो यतयः ! परिशातितसंसृतिपाशम् ॥ ८
मानस० ।

श्रीयुत रामकवि के द्वारा वर्णित इस पापनाशक भवजालछेदक महादेव के स्वरूप को प्राणायामनिरत यतिगण ध्यान करें।८

आकृष्टन्न निवर्तते प्रयतते यातुं स्मृतेर्मुद्रणे,
भूयः संस्मरति प्रमज्जति पुनस्तत्रैव नैवेङ्गते[2]।
धृष्टं मानसमित्थमालिमिलितं गङ्गाधराऽङ्घ्रिद्वये,
संरोधोत्थभयादिवर्च्छति न मे पार्श्वं करोम्यत्र किम् ॥ २

हे सखि ! खींचने पर भी मेरा मन उधर से लौटता नहीं, उनकी याद ही करता रहता है, महादेव के रूप में डूब जाता है। वहीं एकाग्र हो जाता है। हे सखि ! मेरा धृष्ट मन महादेव के चरणों में निरुद्ध होने के डर से मेरे पास आता ही नहीं, क्या करूं तुम ही बताओ।२

देवीनामरविन्दसुन्दरदृशां लीलाविलासान्रसा-
दास्वाद्य स्वदृशा समुत्सुकमना मैनात्मभूरप्यभूत्।
प्रोचे[3] च स्वसखीं सुराधिपवधूगर्वाऽपवर्गक्षम-
स्मेरश्रीवदना समागमय मां रुद्रेण भद्रेऽधुना। ३

इस प्रकार सुर-सुंदरियों के लीला-विलासों को देख कर शिव के लिए पार्वती भी दर्शनातुर हो उठीं तथा देवांगनाओं के गर्व दमन क्षम मुख की शोभावाली वह अपनी सखी से कहने लगी कि हे सखि ! तू मुझे शिव जी से अब अविलम्ब मिला दे।३

---

*यहाँ आ+इनम् यह पदच्छेद है।
१. ध्रसयति ख०। २. इगि धातोर्लटि रूपम्। ३. ऊचे ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

गौडीरागेण गीयते

त्रिनयननयनपथं गतया मम लोचनरोचनरत्नम्।
हरकरकृष्टभुजाऽग्रयुजा कृततल्पसमर्प्पणयत्नम्॥ १
विजये! गत्वा जित्वा कृत्वा पाशे कालदलनमधीशम्।
स्मरपरवशमनसा तरसा सखि! रमय मया सममीशम्॥ ध्रुवपदम्

गौडी राग में गाया जाता है

हे सखि! विजया, तू जाकर शिवनेत्र वर्तिनी एवं स्मर परवश मनवाली मुझे उस मेरे नेत्रों के आसेचनक तथा महादेव के करांकर्षण से उनके भुजाग्र से संसक्त होकर सह शय्यार्थ यत्नशील काल-विजयी मेरे अधीश्वर शिव को जीतकर पाशवद्ध करके मेरे साथ मिला दे।१

ह्रीभरनमितमुखाम्बुजया चिबुकोर्ध्वकरणकरभागम्।
पुलककुलाऽङ्कुरभूषितया पृथुवेपथुदर्शितरागम्॥ २
स्मर०।

हे सखि! मैं लज्जा से उनके समक्ष मुख नहीं उठा सकती, फिर भी जो मेरे मुख को ठोड़ी में हाथ लगा कर उठा देते हैं, एवं तव मैं रोमांचित होकर कम्पित गात्रवाली हो जाती हूँ, ऐसी मुझसे अत्यधिक कम्पन से प्रदर्शित रागवाले शिव को मिला दे।२

स्वेदविभेददराऽर्द्रितया स्वरसूचितसात्त्विकभावम्।
दिशि दिशि देशितलोचनया निजनयनविजितमृगशावम्॥ ३
स्मर०।

स्वेदोद्गम से मैं आर्द्र शरीरवाली वन गयी हूँ। उधर शिव जी भी स्वर से अपने सात्त्विकभाव प्रकट कर रहे हैं। मैं चकित होकर इधर-उधर देख रही हूँ, उधर शिव भी अपने नेत्रों से मृग वालक को जीतनेवाले हैं। उनसे मुझे मिला दे।३

३—गीत०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धूनितधन्यतनूलतयाऽऽश्रितनिधुवनविविधविधानम् ।
तूलीतलमधिरोपितया हृतवसनजजघनपिधानम् ॥ ४
स्मर० ।

मैं अपने शरीर में कम्पन भाव को धारण किए हुए हूँ, वे निधुवन के विविध विधानों के पण्डित हैं। मैं गुदगुदे गद्दे पर लेट रही हूँ, उन्हों ने भी अधोवसन का अपहरण कर दिया या कर लिया है। उनसे मुझे मिला दे।४

मृदुलननध्वनि [1]भङ्गिभृताऽऽहितदन्ततितिक्षतिभीतिम् ।
करलुलिताऽलकगण्डलया परिचुम्ब्य कृपाऽधरपीतिम् ॥५॥
स्मर० ।

हे सखि ! मीठी निषेध-ध्वनि वाली तथा अपने हाथों से बाल सम्हालने वाली मुझे दन्तक्षत-भीति को करने वाले चुम्बन करके अधर रस पानवाले महादेव से मिला दे।५

नखमुखलिखितपयोधरया परिरम्भरभसरसमग्नम् ।
मणितभणितिपटुपण्डितया किलकिञ्चितचरितरसज्ञम् ॥ ६
समर० ।

हे सखि ! नखक्षतांकित स्तनवाली तथा समागम के समय मणित ध्वनि करने वाली मेरे हठात् आलिंगन के रस में मग्न, और किलकिञ्चित (हाव-भाव) करने में चतुर महादेव से मिला दे।६

अविरतरतरसमज्जितया प्रथमार्ऽपितभावनिमीलम् ।
विगतेतरतनुचेष्टितया कुचकलशवलम्बनशीलम् ॥ ७
स्मर० ।

हे सखि ! निरंतर निधुवनरस में मग्न एवं निश्चेष्ट पड़ी मुझे प्रेम भाव में आँख मींचने वाले तथा कुचकलश पकड़ने वाले महादेव से मिला दे।७

---

१. मृङ्गिग ख० ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीकविरामकथितमिदमवितथमन्धकरिपुरतिरम्यम् ।
उत्सुकगिरिसुतया भणितं भण धन्यतरश्रुतिगम्यम् ॥८
स्मर० ।

पाठको ! महाकवि राम निर्मित यह शिव-पार्वती-रति से रमणीय, अत्यन्त धन्यजनों द्वारा श्रवणीय, उत्सुक पार्वती द्वारा वर्णित काव्य का पाठ करो।८

लास्यन्नाकनतभ्रुवां सफलयन्हास्यं वितन्वन्स्मरम्,
दास्यं स्वस्य च कारयन् प्रमुदितं स्वाऽऽस्यञ्च सन्दर्शयन्
सद्यः सङ्कुचितेङ्गितः प्रियसखि ! प्रायः समुद्वीक्ष्य माम्,
यद् वैलक्ष्यमगान्मृडो मम मनो नूनन्न तन्मुञ्चति।४

स्वर्गरमणियों के नृत्य को जन्म देने वाले, हँसते हुए काम को दास वनाते हुए, मुदित मुख को प्रदर्शित करते हुए, हे सखि ! मुझे देखते ही चेष्टाओं (काम सम्बन्धी) को कम करते हुए महादेव जिस लज्जा का अनुभव कर रहे थे, वह मुझे भूलती नहीं।४

प्रसूनैरनूनैरशोको न शोकं, विरागं परागैर्न मल्ली मतल्ली।
न भाभिः शुभाभिर्विभावर्यधीशो, समाधिम्ममाऽऽधिञ्च दूरीकरोति॥५

हे सखि ! अशोक मेरे शोक को दूर नहीं करता, मल्लीलता अपने परागों से शिव के वैराग्य को दूर नहीं करती, राकेश ज्योत्स्ना से उनकी समाधि को और मेरी हृदय व्यथा को दूर नहीं करता।५

मद्भालेन्दुकरैः कुचाऽम्बुजयुगं किन्ते कठोरायते,
शम्भोरित्थमुमां प्रति प्रवदतो वाणीमुपाकर्ण्य सा,
गङ्गाभीतवदायतन्निजकरं कृत्वा कपर्दाच्छनै—
र्मुग्धेन्दुं प्यधिताऽथ तत्र विहसन् श्रीशङ्करः पातु वः॥ ६

इति श्रीगीतगिरीशे मानिनीमनोरथो
नाम द्वितीयः सर्गः॥२॥

शिव ने जगदम्वा से कहा कि तुम्हारे कुचकमल मेरे मस्तकस्थ चन्द्र की किरणों से संकुचित हो जाते हैं। गंगा ने समझा कि मुझसे कह रहे हैं और झट अपना हाथ वढ़ा कर जटाजूट को खोल कर चन्द्रमा को ढक दिया, यह देखकर भगवान् शंकर पार्वती की ओर देखकर हंसने लगे, ऐसे भगवान् शिव हमारी रक्षा करें।६

॥ इति द्वितीयः सर्गः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तृतीयः सर्गः

विहरति शितिकण्ठे कण्ठलग्नैकगङ्गा,
भुजयुजि भवभार्याऽयात्परावृत्य कोपात्।
पशुपतिरपि यान्तीन्तामनाकार्य सद्योऽ—
नुशयवशमयासीद् दृप्तकन्दर्पतप्तः ॥ १

भगवान् शिव पार्वती के साथ ताण्डव के समय विहार कर रहे थे तव पार्वती उनके कण्ठ से संलग्न थीं किन्तु जव गंगा से उनकी वाहु उठी हुई छुई गयी तव वह पार्वती कोप से मुंह मोड़कर चल पड़ीं। उन्हें जाती हुई देख कर भी शिव जी ने लौटने के लिए नहीं कहा तथा स्वयं वियोग में संतप्त होते हुए पाश्चात्ताप करने लगे।१

कर्णाटरागेण गीयते

जर्ज्जरीकृतनिर्ज्जरीजनमानयागतमेव ।
वीक्ष्य मां वनिताशतावृतमेतया सरुषेव ॥ १
शिवशिवदृशाऽरुणितया सा बभावितरेव। ध्रुवपदम्

(कर्णाट राग से गाया जाता है)

देवांगनाओं के मान को मर्दन करनेवाली मुझे सैकड़ों देवांगनाओं से आवृत देख कर कुपित होती हुई सी चली गयी और वह रक्तनेत्रों से कुछ शिव-शिव ऐसी प्रतीत होती थी जैसे वह पार्वती से कोई भिन्न स्त्री हो।१

तर्कयामि तदाननेऽरुणता भृता मधुरेण।
रोषपोषजरक्तिमा न विभिद्यते ह्यधरेण ॥ २
शिवशिव०।

पार्वती के मुख पर जो लालिमा थी वह माधुर्य से पूर्ण थी, रोषजन्य लालिमा उनके अधरों की लालिमा से भिन्न नहीं थी।२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

सामिवक्रितवक्त्रया यदपाङ्गभङ्गिरसञ्जि[1]।
एतया मयि तद्विचिन्तयतो ममाऽन्तररञ्जि[2]॥ ३
शिवशिव०।

कुछ मुंह टेढ़ा करके जो उसने मेरी ओर तिरछे नयनों से देखा उसे याद करके मेरा अन्तःकरण रागयुक्त हो जाता है।३

किं गताऽसि हताशे! कामकृशानुहेतिहतेन।
काकुवाक्यशतन्मया शृणु भण्यते प्रणतेन॥ ४
शिवशिव०।

हे हताश! तुम क्यों चली गयीं? कामाग्नि ज्वाला से दग्ध मेरे द्वारा नम्र होकर जो चाटुकारितापूर्ण वाक्य कहे जाते हैं उसे सुनो।४

रम्यसेऽप्यनुगम्यसेऽपि च नम्यसेऽपि भवानि!।
एहि देहि च दर्शनं कुरु चाटुकानि नवानि॥ ५
शिवशिव०।

हे पार्वती! मेरे द्वारा तुम्हारा अनुगमन, नमन और रमण किया जाता है तुम मुझे दर्शन दो और मीठे वाक्य बोलो।५

क्वाऽसि साहसिके! विहासकशीलतामपहाय।
जीवयोरसि हेमकुम्भनिभौ कुचौ विनिधाय॥ ६
शिवशिव०।

हे साहसिके! तुम अपनी परिहासशीलता को छोड़कर कहाँ चली गयीं? अपने सुवर्ण कुम्भ सदृश वक्षःस्थल को मेरे उरःस्थल पर स्थापित करके मुझे जीवित करो।६

---

१. षञ्ज् (सङ्ग्) धातोः (भावे)रूपम्। २. रञ्ज् (रागे) इत्यस्य (भावे) रूपम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri.

मन्तुमर्हसि मन्तुमेतमुमे! न मे न कदाऽपि।
एवमाचरितोऽस्मि मानिनि! दास एष सदाऽपि॥ ७
शिवशिव०।

हे उमे! मेरे उस अपराध को मन में स्थान न दो। मैं दास के समान आचरण करता हुआ आगे कभी ऐसा अवसर न दूँगा।७

रामजित्कविर्वर्णितं कलिकल्मषं विनिहन्ति।
गीतमेतदधीतमाशु लसद्यशो वितनोति॥ ८
शिवशिव०।

श्री रामकवि से वर्णित यह गीत कलियुग के पापों को दूर करता है और यश का विस्तार करता है।८

पाशौ ते श्रवणावपाङ्गतरला दृग्भङ्ग्यस्ते शराः,
कोदण्डं भृकुटीयुगं गिरिसुते! नासाऽपि ते नालिका।
सीमन्तस्तव भल्ल एष च भवद्धम्मिल्लकोऽप्युल्लसन्,
खड्गश्चण्ड्यसि तत्प्रसूनविशिखाऽनेकाऽऽयुधान्येकिका॥ २

पार्वती के विरह में शिव की भावनाएँ—

हे पार्वती! तेरे कान फन्दे हैं, तेरी कटाक्ष लहरी बाण हैं, तेरी दोनों भौंहें धनुष हैं, तेरी नासिका तूणीर है, तेरी सीमन्त भाला है, तुम्हारे सिर के बाल खड्ग हैं। इस प्रकार पुष्पबाण (कामदेव) के अनेक आयुधों के रूप में तू अकेली ही है।२

सुधा त्वदधरासवस्तव मुखं जगन्नन्दनम्,
विमानमपि ते मनस्त्वमसि कल्पवल्ली स्वयम्।
उरोजनवचूचुके तव च दिव्यचिन्तामणी,
ततस्त्वदपरां दिवन्न गणयामि रम्भोर्वहम्॥ ३

तुम्हारा अधर सुधामय है, तुम्हारा मुख जगद्-आह्लादक है, तुम्हारा मन वायुयान है, तुम स्वयं कल्पलता हो, तुम्हारे उरोज की घुंडियाँ दिव्य चिन्तामणि हैं। हे रम्भोरु! तुमसे भिन्न अन्य कोई स्वर्ग नहीं (क्योंकि स्वर्ग में भी अमृत, नन्दनवन, विमान, कल्पवृक्ष और चिन्तामणि होते हैं।३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

मणीमाला ज्वाला स्रगपि हृदि हालाहलसमा,
मृणालीयं बाला विषधरकराला लगति मे।
अराला तद्वेणी मदनकरवालाऽऽकृतिरुमे!
चिरं चित्ते धर्त्तुर्व्यथयति ममाऽऽत्मानमसकृत्॥ ४

हे उमे! तुम्हारी मणिमाला ज्वाला के समान है, तुम्हारे फूलों की माला हलाहल के समान है, यह छोटा-सा मृणाल सर्प के समान है, तुम्हारी यह टेढ़ी केशलता काम की तलवार के समान है, इसे स्मरण करने पर मेरी आत्मा व्यथित हो जाती है।४

उमानासानाली तदुपहितमुक्ता च गुलिका,
वियोगोष्णश्वासोऽप्यनलमिलनं यो मृगमदः।
स एवाऽर्कं भस्माऽयसनलकविस्फोटनकरम्,
मनोहंसं हंसि स्मर मम कथं न द्रुततरम्॥ ५

पार्वती की नासिका तर्कश है, उस पर मोती का आभूषण गुलिका है वियोग की जो गरम साँस है वह अग्नि का मिलन है, कस्तूरी का विन्दु ही अर्क की भस्म है जिससे लोहा भी भस्मसात् हो जाता है। मेरे मन रूपी हंस को तू मार रही है। तू जल्दी ही क्यों नहीं मार रही है (हंसि यह क्रियापद है सम्बोधन नहीं)।५

तान्दृष्टि वदनन्तदेव कबरीन्तामेव तौ च स्तनौ,
तावेवात्र भुजौ पदे अपि च ते तस्यास्तदेवोदरम्।
पश्यामि भ्रमभङ्गिभिर्नयनयोरत्यल्पभाग्यः परम्,
ता वाचोऽमृतशीतला मृदुतरं स्पर्शं च नेक्षे क्वचित्॥ ६

हे पार्वती! तुम्हारी वही दृष्टि है, वही मुख है, वही वाल है, वहीं स्तन है, वहीं भुजाएँ हैं, वे ही पैर हैं, वही उदर है, किन्तु भ्रम के प्रभाव से भाग्यरहित मैं तुम्हारी अमृत के समान शीतल वाणी को और कोमल स्पर्श को कहीं नहीं पा रहा हूँ।६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गौरीदृशस्तव कथं भविता न यानम्,
किं देव! दीव्यसि सरित्यतिवेलमेहि।
निह्नूय जह्नुतनयां जययोक्त इत्थम्,
श्लिष्टं स वोऽवतु जले विहरन् गिरीशः॥ ७

इति श्रीगीतगिरीशे उत्कण्ठितशितिकण्ठो
नाम तृतीयः सर्गः॥३॥

हे देव! तुम्हारा नादिया ऐसा है अर्थात् थका हुआ है तो क्या आज न चलोगे। पक्षान्तर मे गौरी की ओ।र टकटकी से देखने वाले तुम्हारा गमन कैसे होगा अर्थात् न होगा। हे देव! तुम द्युलोक की नदी में अधिक देर तक स्नान कर रहे हो अतः अव लौट आओ। इस प्रकार जया नाम की पार्वती की सखी ने गंगा को छिपा कर श्लेषयुक्त वाणी में जिस महादेव से जल विहार काल में कहा वे शिवजी तुम्हारी रक्षा करें।७

॥ इति तृतीयः सर्गः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्थः सर्गः

अथ कथमपि सन्निवृत्य सद्यस्तव विरहव्यथाऽर्दितस्वचित्ता।
क्षणमपि युगवन्नयत्यपर्णेत्यवददिमं विजया समेत्य शम्भुम्॥ १

इसके वाद किसी भी प्रकार लौटकर तुम्हारी विरह-व्यथा से पीड़ित हृदय-वाली पार्वती एक क्षण को भी युग के समान विता रही है यह संदेश विजया महादेव को मिल कर सुनाने लगी।१

धन्यासीरागेण गीयते

परभृतरुतमतिनिशितशूकशतमिव मनुते श्रुतिनीतम्।
मधुकररवमवगत्य विगायति वीणागतमपि गीतम्[1]॥ १
शैलसुताऽहितखेदा[1]।
शङ्करविरहदहनकदनादतिपाण्डुरवर्णविभेदा ॥ध्रुवपदम्

धन्यासी राग में गाया जाता है

कोयल की ध्वनि कान में पड़ने पर वह समझती है कि सैकड़ों विच्छुओं ने कान पर डंक मारा हो तथा भौंरों के गुंजार को सुन कर वीणा पर गाये जाने वाले गान को भी निन्दा की दृष्टि से देखती है। इस प्रकार खिन्न पार्वती शिव की विरहाग्नि से दग्ध हुई पीली पड़ गयी।१

नलिनीदलमतिशीतलमस्लन्तदुरसि राजति मुक्तम्।
हुतभुजि हुतमिव मलिनिममर्मररवताऽऽकुञ्चनयुक्तम्॥ २
शैलसुता०।

उसके वक्षःस्थल पर शान्ति के लिए रखा हुआ शीतल कमलिनी का पत्ता भी आग पर रखे हुए पत्ते की तरह मलिन और मर्मर ध्वनि वाला वन जाता है और सिकुड़ जाता है।२

---

१. स्वेदा क०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi.

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri.

कलयति शशधरकरसङ्करमनलमिलनमिव गौरी।
चन्दनमपि तापयति च तामति शरदि द्युतिरिव सौरी॥ ३
शैलसुता०।

चन्द्रमा की किरणों को वह आग की लपटों-सा जानती है तथा चन्दन का लेप भी उसे शरद् ऋतु में सूर्य की प्रभा की तरह संतप्त करता है।३

वहति च कुसुमशयनगतगिरिजा वपुरतिविरहविलासम्।
अर्ज्जुनशितशरतल्पतलस्थितदेवव्रतकृतहासम् ॥ ४
शैलसुता०।

वह पार्वती फूलों की शय्या पर लेटी हुई भी विरहाग्निदग्ध शरीर को धारण करती है। जैसे अर्जुन के बाणों की शय्या पर भीष्म लेटे थे उसी प्रकार वह लेटकर उनका मजाक-सा करती है।४

इच्छति चन्द्ररसेन लिखितुमखिलामपि तव भव! मूर्तिम्।
विगलज्जल[1] भरविलुलितनयना तनुते न लिखितपूर्तिम्॥ ५
शैलसुता०।

हे शिव! तुम्हारी पूर्णाकृति को कपूर से चित्रित करने का यत्न करती है। किन्तु उस पार्वती के नेत्र निकलते ही आँसुओं से भर जाते हैं। अतः चित्र की पूर्ति नहीं कर पाती।५*

---

१. जर क०।

*इसी आशय का महाकवि कालिदास का
आत्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
.........धातुरागैः शिलायाम्।
इत्यादि मेघदूत का पद प्रसिद्ध है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi.

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्वसिति न विश्वसिति क्षणमञ्चति तापमुतापरिमेयम्।
प्रभवति तच्छ्वसितेन[1] मुकुर इव शशिनि कलङ्ककलेयम्॥ ६
शैलसुता०।

पार्वती लम्बे-लम्बे श्वास-प्रश्वास लेती है, किसी का उसे विश्वास नहीं है तथा क्षण-क्षण में अपरिमित सन्ताप शरीर में बढ़ जाता है। प्रतीत होता है कि चन्द्रमा में यह कालिमा पार्वती के परमनिश्वासों की है जो कि शीशे के सुन्दरचन्द्र में श्वासों के निरन्तर लगने से उत्पन्न है।६

प्रणमति चित्तगतं बहिरिव सा वदति च गिरमनुवारम्।
वरद! भवन्तमृते मम जीवनभेषजमितरदसारम्॥ ७
शैलसुता०।

हे वरद! पार्वती चित्तस्थित आपको ऐसे प्रणाम करती है जैसे आप सामने खड़े हों तथा आपको लक्ष्य करके यह कहती है कि हे शिव! तुम्हारे विना मेरा अन्य कोई औषध नहीं, तुमको छोड़कर संसार असार है।७

श्रीकविरामगवीनवनीतजरसरुचिरस्ति यदा ते।
हरविरहाकुलहैमवतीसुवचोऽस्तु मनस्यवदाते॥ ८
शैलसुता०।

यदि आपको रामकवि की कविता के नवनीत के आस्वादन में रुचि है तो शिवविरहव्याकुला पार्वती के उक्त वचन तुम्हारे स्वच्छ हृदय में स्थान ग्रहण करें।८

निर्यान्ती भवनाद् विशन्त्यपि पुनस्तत्रैव भूयस्तदे—
वाभ्यस्यन्त्यथ संक्षु दिक्षु चकितं चक्षुः क्षिपन्ती सती।
मानेनैकत एकतश्च मदनेनाऽऽकृष्यमाणा द्वयो—
र्नो मुञ्चत्यनुरोधमन्धकरिपो! सा[2] सङ्कटे वर्तते॥ २

हे अन्धकासुरसंहारिन्! वह सती पार्वती भवन से आपके समीप जाने के लिए चल पड़ती है पर मानवश फिर घर को लौट आती है। इस प्रकार वार-वार वाहर जा-जाकर लौटती है। साथ ही चकित होकर कोई देख तो नहीं रहा है, इस विचार से जल्दी-जल्दी इधर-उधर भी देखती जाती है। इस प्रकार मान या दर्प से कभी कामावेश के फन्दे में पड़ कर दोनों का अनुरोध न टालती हुई बड़े संकट में पड़ी हुई है।२

१. तद्वसितेन क०। २. या ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

यांति स्विद्यति खिद्यति प्रलपति प्रत्येति रोमाञ्चति,
ध्यायत्यप्यथ मूर्च्छति प्रपतति भ्राम्यत्यलन्ताम्यति।
उच्चैर्निःश्वसिति प्रमीलति पुनः सङ्कम्पते सीत्करो-
त्येवं शर्व! वियोगिनी न लभते कां कामवस्थां शिवा ॥ ३

हे शिव! वही पार्वती मान और मदनातुरता के कारण कभी पसीनों में स्नान करती है, कभी खिन्नमन होती है। कभी प्रलाप करने लगती है, कभी आत्म-विश्वास से दृढ़ हो जाती है। कभी रोमांचित हो उठती है, कभी आपकी स्मृति में लीन हो जाती है, कभी मूर्छित हो गिर पड़ती है, कभी टहलने लगती है, कभी संतप्त होती है, कभी लम्बे-लम्बे श्वास लेने लगती है, कभी अर्धनिद्रावस्था में आ जाती है, कभी काँपती व सी-सी करने लगती है, इस प्रकार वह शिवा किस-किस दशा का अनुभव नहीं करती, अर्थात् वियोगिनी वह हर समय तड़पती ही रहती है।३

हरविरहिणीन्दुःखाकर्त्तु विधोः किरणैरुमाम्,
हरति न चिराद् वृक्षव्राताद् वलानि बलान्मधुः।
न स परमिदं चित्ते धत्ते यतः क्वचिदुद्गतम्,
किसलयमपिच्छायायै स्यात् भृशं कृशवर्ष्मणः ॥ ४

हे शिव! उस विरहिणी पार्वती को दुःख देने के लिए वसन्त ऋतु बड़ी तेजी से प्रत्येक वृक्ष से पत्ते झाड़ देता है अर्थात् पतझड़ के कारण वृक्ष पत्तों से रहित होते हैं—जिससे चन्द्रमा की किरणों का उस पर सीधा प्रहार होता है, किन्तु उस वसन्त को यह पता नहीं कि कहीं पर निकला छोटा-सा भी नवीन पत्ता (किसलय) उस कृशतमा पार्वती की छाया के लिए अर्थात् चन्द्र किरणों के आवरण के लिए पर्याप्त होगा। (अर्थात् पार्वती एक छोटे किसलय के नीचे ढाँकी जा सकती है इतनी दुबली हो गयी है, कृशता का यह अद्भुत वर्णन है।)४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

त्रुटिः[1] कल्पत्यल्पाभरणमपि भारत्यनलति,
प्रसन्नःशुभ्रांशुर्गरति[2] घनसारद्रवलवः।
प्रसूनस्रक् सर्पत्यथ पिकरुतं कुन्तति मृदु,
श्रुतौ तस्याः शम्भो! शमय विरहाग्निन्नगभुवः॥ ५

हे शम्भो! विरहिणी पार्वती के लिए विरह में एक-एक क्षण कल्प जैसा बीतता है, हलके से हलका आभूषण बोझ लगता है, पूर्ण चन्द्र आग-सा जलाता है, चन्दन-द्रव विष-सा लगता है, माला साँप-सी डसती है, कोकिल ध्वनि कानों में छेदती है, अतः आप उस गिरिजा के विरहानल को पहुँच कर दूर कीजिए।५

विटपि विटपानारुज्याऽयं नयन् गगनाङ्गणे,
शिखरि शिखरप्रायं रेणुन्दिशासु समर्पयन्।
मम विशकृशं गात्रं वाताः शिवं प्रति संवह-
त्विति गिरिसुता तिष्ठत्यद्य प्रवातवनान्तरे॥ ६

यह तेजवायु पेड़ों की शाखाओं को तोड़ कर आकाश में उड़ा ले जाता है, तथा पहाड़ की चोटियों को कण-कण करके दिशाओं में विकीर्ण कर देता है। अतः वही वायु विस (कमलनाल) के समान कृश मुझे भी शिव जी के चरणों में पहुँचा दे, अतः पार्वती उस वन की वायु के सामने बैठ जाती है।६

यदत्रच्छत्रं हृन्निहितशतपत्रं विरचितम्,
सरोनालीदण्डं विशततिमयञ्चामरमपि।
विधत्ते युवतन्तद् वितनुरुरसि श्रीगिरिभुवः,
स्रवन्नेत्राम्भोभिर्विरहमभिषिच्याऽद्य नृपतिम्॥ ७

वितनु कामदेव ने आज पार्वती के नेत्राम्बुजों के जल से अभिषेक करके विरहदेव को राजगद्दी पर बैठा दिया है, वह राजगद्दी पार्वती का हृदय या वक्षः-स्थल ही है, अतः उस विरह रूप राजा की शांति के लिए पार्वती के हृदय पर सफेद कमल का छाता लगाना ठीक ही है। तथा राजचिह्न कमलनाल के दण्ड विसतन्तुमय का चामर भी वहीं हृदय पर हिलाया जा रहा है। यह राजा साहब की शान में सब ठीक ही किया जा रहा है।७

---

१. पुटिः क०। २. गिरति ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संग्रामे गजदितिजेन सार्द्धमीश-
स्तत्कुम्भौ कुचसदृशौ निरीक्ष्य गौर्य्याः।
संस्विद्यन्नथ पृथुवेपथुञ्च गच्छन्,
तत्सैन्यान् क्षणमिव हर्षयन् पुनातु॥ ८

इति श्रीगीतगिरीशे गौरीगुरुतराऽनुरागो
नाम चतुर्थः सर्गः ॥४॥

गजासुर के साथ युद्ध में महादेव हाथी के मस्तक को पार्वती के स्तनों के समान देख कर स्वेदयुक्त एवं कम्पयुक्त हो उठे, अर्थात् उन्हें सात्त्विक भाव का आवेश हो गया—यह देख कर गजासुर की सेना में थोड़ी देर के लिए हर्ष छा गया। अतः वे शिव हमें पावन चित्तवाला बनावें।८

इति चतुर्थः सर्गः।

---

१. महाकाव्ये इत्यधिकं पदं ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

पञ्चमः सर्गः

दारुकान्तारसत्कुञ्जे मञ्जुगुञ्जन्मधुव्रते।
निलीयाऽवस्थितां देवीं देवदूती व्यजिज्ञपत्॥ १

देवदूती ने दारुवन के कुञ्ज में जहाँ भौरे गूँज रहे थे वहाँ छिपकर बैठी हुई पार्वती से निवेदन किया।१

केदाररागेण गीयते

शिशिरतरं विधुकिरणकलापम्।
मनुते दहनमिवाऽहिततापम्॥ १
शैलजे! पुरजित्तव विरहे॥ ध्रुवपदम्

केदार राग

अतिशीतल चन्द्र-किरणों को हे पार्वती! तेरे विरह में महादेव दग्ध करने वाली अग्नि की ज्वालाओं के समान समझते हैं।१

कुसुमशयनगतनवनवमल्लीम्।
चेतसि चिन्तयति स्मरभल्लीम्॥ २
शैलजे०।

फूलों की शय्या पर बिछी हुई नई जूही के फूलों को शिव कामदेव का भाला समझते हैं।२

मृदुलमरालसुकूजितजातम्।
नूपुररव इव हरहृदि भातम्॥ ३
शैलजे०।

हंसों की ध्वनि उन्हें ऐसी लगती है जैसे आती हुई पार्वती के पैरों के बिछुओं की ध्वनि हो।३

---

१. नवविरहम् ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

वीक्ष्य सुचन्द्रकबर्हणपिच्छम्।
स्मरति स कबरं सकुसुममच्छम्॥ ४
शैलजे०।

वे महादेव मोरों के पिच्छों के चंदोंवे को देख कर पार्वती के फूलों से सजे सुन्दर केशभार को याद करने लगते हैं।४

अलकनन्दिकासैकतजातम्।
तव पदमञ्चति सप्रणिपातम्॥ ५
शैलजे०।

हे शिवे! वे शिव अलकनन्दा नदी के वालुकामय प्रदेश में जो तुम्हारे पैरों के चिह्न अंकित हो जाते हैं उन्हें झुक-झुक कर प्रणाम करते हैं।५

पर्यटति प्रतितरुगुरुखेदम्।
ध्यायति वपुरपि मनसि तवेदम्॥ ६
शैलजे०।

हे शैलजे! वे शिव प्रत्येक पेड़ के (नीचे) दुःखी होकर (तुम्हारी) याद में तुम्हारा पता लगाने के लिए घूमते-फिरते हैं। तथा मन में तुम्हारे।(रूप और) शरीर का भी स्मरण करते जाते हैं।६

जपति च तव शुभमभिधावर्णम्।
चलति[1] दलेऽपि दिशति निजकर्णम्॥ ७
शैलजे०।

वे तुम्हारा शुभ नाम जपते हुए (घूमते हैं) तथा पत्ते के भी हिलने पर तुम्हारे आने की आशंका में उधर ही कान लगाने लगते हैं।७

१. वलति ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकविरामरचितपदमाला
दिशतु सुखं[1] परिहृतभवजाला ८
शैलजे०

श्री कविराज राम कवि की यह पदमाला संसार के दुःखों को नाश करने में अग्रसर हो।८

मणिहारः फणिहारः गलगरमगरुद्रवोऽपि विरहे ते
भालानलमलिकाऽमृतरुचिरतिशेते शिवे! भृशं शम्भोः। २

हे शिवे! तेरे विरह में शिव जी का सर्प का हार मणि का हार है, कण्ठ का गरल अगुरु द्रव्य है, (वे मृत्यु को चाहते हैं) चन्द्र की कान्ति मस्तकस्थ वह्नि ज्वाला से भी बढ़ कर है। यह सब शिवजी का हाल तुम्हारे विरह में हो रहा है।२

भवानीशेह त्वत्पदनलिनसंवाहनकरी,
कयाचित्सुन्दर्या भगवति भवे प्रार्थित इति।
कुतः सेति क्वेति क्व च मम तथा भाग्यमिति स,
ब्रुवन् दृष्टिन्दत्ते दिशि दिशि निराशोऽथ भवति॥ ३

किसी सुन्दरी ने (आकर) भगवान् शिव से कहा कि वह आपके चरणों की सेवा करनेवाली पार्वती अमुक स्थान पर है, तो झट शिव जी ने पूछा कि वह किधर है? कहाँ है? क्या मेरा ऐसा भाग्योंदय हो सकता है? ऐसा कहते हुए शिव इधर-उधर दृष्टिपात करते हैं और तुम्हें न देख कर हताश हो जाते हैं।३

श्रुत्वाऽपि रुचिरा वाचो निर्बन्धमनुबध्नतीम्।
पुनरुक्तवती गौरी गिरीशप्रेषिता जया॥ ४

महादेव से भेजी हुई जया सुन्दर वाणी सुन कर भी (मान का) आग्रह न छोड़नेवाली पार्वती से फिर कहने लगी।४

---

१. परिहृत क०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

असाउरीरागेण गीयते

कलय कलस्वरमधुरिमनिर्ज्जितपिकनिकरे सखि ! मानम् ।
नवयौवनलावण्यविलासकलाविफलत्वनिदानम् ॥ १
अनुरज गिरिजे ! गिरिशे परमे ! अहमपि ते प्रकृतौ ननु न रमे । ध्रुवपदम्

असावरी राग में गेय

हे सखि ! पार्वती ! तुम कोयल से भी मधुर वाणीवाली हो। तुम अपना (प्रिय के प्रति) मान करना अब छोड़ दो। क्योंकि यह मान तुम्हारे नवयौवन और सौन्दर्य को निष्फल बनाने का मूल कारण है ॥१॥ हे गिरिजे ! तुम श्रेष्ठ महादेव जी के प्रति अनुराग करो, मैं तुम्हारी यह मान करने की आदत को पसन्द नहीं करती।

सम्प्रति तं स्वपतिं प्रति रोषकषायविदूषितचित्ता ।
नगनन्दिनि ! निन्दसि मम सुवचनमिदमविविक्तनिमित्ता ॥ २
अनुरज० ।

हे पार्वती ! तुम अपने पति के प्रति सरोष चित्तवाली होकर बिना किसी उचित कारण को बताये मेरे समझाने के वचनों की भी निन्दा करती हो।२

अनुनय चैनमुमे ! मम मानय माऽऽनय मनसि विखेदम् ।
पुररिपुवपुषा तव वपुरेतदुशन्ति² बुधा गतभेदम् ॥ ३
अनुरज० ।

हे उमे ! तुम शिवजी को मना लो। मेरी बात मान लो। मन में मान करके खेद मत बढ़ाओ। क्योंकि विद्वान् लोग तुम्हारा महादेव के शरीर से अभेद मानते हैं। (अतः उनका मनाना आपको ही अपने आप मनाना है, फिर स्वयं से स्वयं का क्या मान करना, यह भाव है) ।३

गिरमपि मे न शृणोषि वृणोषि दृशापि न मामभिजाते ! ।
जनमिममपि शिवमिव कलयसि किं वृत्तिरियन्मयि का ते ॥ ४
अनुरज० ।

हे अभिजाते ! तुम मेरी ओर देखती भी नहीं हो, मेरी बात सुनती नहीं हो। क्या मुझ सखी को भी तुम शिव समझ बैठी हो ? (जो इतनी मेरे प्रति उपेक्षा) । क्या मेरे प्रति यह तुम्हारी वृत्ति या व्यवहार उचित है ?४

---

१. नन्दसि ख० । २. वश् (कान्तौ) धातोः रूपम् (कान्तिरिच्छा)

Dr. Urmila Sharma Collection. Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिचर हरमनुसर मतमिति हरिहर गर्वमखर्वम् ।
अनुशयमेषि पुरा परिभावय पुरहृत्प्रियमिह सर्वम् ॥ ५
अनुरज० ।

हे पार्वति ! तुम महादेव के चरणों में जाकर लिपट जाओ। इस अतिशय गर्व को छोड़ दो, मेरी बात मान लो। तुम व्यर्थ ही पश्चात्ताप कर रही हो, पहिले की तरह पुरहर को अपना प्रिय और सर्वस्व मान लो।५

स्रोत इवैति गतन्न वयः पुनरूनितमृदुकिरणाऽऽस्ये ! ।
भज भवमङ्ग भवानि ! कौमुदीमदहर[1] मोहनहास्ये ! ॥ ६
अनुरज० ।

हे चन्द्रमा को भी तिरस्कृत करने वाले मुखवाली ! भवानी ! जल प्रवाह के समान बीता हुआ यौवन फिर लौट कर न आयेगा। अतः चन्द्रिका-निन्दक एवं आकर्षक हँसीवाली हे पार्वती ! तुम शिव जी की शरण में चली जाओ।६

यदि तु विपक्षवधूपरिजनवचनैरयमधिकमुदास्ते।
कथय तर्हि किमुपायशतैरपि तव सखि ! सुमुखि ! मुदास्ते ॥ ७
अनुरज० ।

हे सुमुखि ! सखि ! पार्वती ! अगर कहीं विरोधी स्त्रियों के द्वारा लिखा-पढ़ा देने पर शिव जी तुम्हारी ओर से विरक्त हो बैठे तो चाहे कितने ही सुखी होने के उपाय क्यों न किये जायँ क्या तुम सुखी रह सकोगी (कदापि नहीं)।७

---

१. मुदहर ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

इति कविरामजितः कृतिरतिरसिकेषु तनोतु विनोदम्।
हरचरणस्मरणाऽमृतमज्जनजनितमपि च हृदि मोदम्॥ ८
अनुरज०।

इस प्रकार यह श्रीरामजित कवि की यह कृति रसिकों की आनन्ददायिनी बने, तथा महादेव भगवान् के चरणकमलों के स्मरण रूप अमृत कुण्ड में डुबकी लगाने का आनन्द भी दे।८

यद्वाचोऽमृतमञ्जुलाः श्रवसि ते शूलन्ति यत्ते तनुः,
शुष्यत्युद्भ्रमति त्वदीयदृगपि श्वासावली जृम्भते।
अश्रु प्रस्नवति ज्वलज्ज्वलनवत्तल्पं भवत्यङ्ग! तत्,
सर्वं तेऽस्य दुराग्रहस्य गिरिजे! मानस्य विस्फूर्जितम्॥ ५

हे पार्वती! जो अमृत जैसी भी मेरी वाणी तुझे कानों में शूल की तरह चुभती है जो कि तेरा शरीर सूखा जा रहा है, तेरी आँखें भी नहीं जमतीं श्वास-प्रश्वास और बार-बार जँभाई आती है, आँखें रोती रहती हैं तथा शय्या भी जलते हुए अँगारों की तरह तप रही है। हे गिरिजे! यह सब तो दुर्विषयों में आग्रहशील तेरे मान करने का ही प्रताप है।५

त्वन्मोहेन विवर्द्धते सन्मयं वासन्तिको वासरो,
ह्रासं रात्रिरुपैति मानिनि! मुदा साकं तवैवाम्बिके!।
प्रालेयं स्रवति त्वदश्रुसरिता सार्द्धं मरुद्दक्षिण-
स्त्वच्छ्वासेन सहाऽश्नुते जगदिदं मा मानमेनं भज॥ ६

अये गिरिजे! तेरे मोह (मूर्च्छा) के साथ-साथ वसन्त के दिन भी बढ़ते जा रहे हैं तथा तेरे हर्ष के साथ हे मानिनि! यह रात भी ह्रास को प्राप्त होती जा रही है। तेरे आँसुओं की नदी तेरे नेत्रों के साथ अश्रु रूप ओस के कणों को टपका रही है, तथा यह मलय वायु दक्षिण दिशा से आ रहा है, वह तेरे श्वासों के साथ सारे संसार को लू में झुलसाता-सा हुआ संसार में फैल रहा है, अतः तुम ऐसे मान का परित्याग कर दो, मेरी सीख मान लो।६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

मालवगौडीरागेण गीयते

नन्दापुलिने मृगमदमलिने [1]सुररमणीरमयन्तम्।
पश्य[2] विभावैरीरितभावैं रतिपतिमपि नमयन्तम्॥१
अलकोपवने शीतलपवने विहरति सति स कपर्द्दी।
अरिकरिकुम्भविबुधवनिताजनपीनस्तनपरिमर्दी ॥ध्रुवपदम्

मालव गौड़ी राग में गेय

अलकनन्दा के पुलिन में जहाँ कस्तूरी के नाभिगुच्छ बिखरे पड़े हैं, वहाँ देवांगनाओं के साथ विहार करते हुए, तथा हावभाव विकसित करनेवाले विभावों के द्वारा कामदेव को भी कामकला के प्रकटन से तिरस्कृत करनेवाले शिव जी को देखो॥१॥ अलकापुरी के उपवन में जहाँ कि शीतल वायु वह रही है वहाँ हे सति ! पार्वती ! गजासुर के कुम्भ के समान पीन देवांगनाओं के स्तनों का परिमर्दन करते हुए कपर्दी जटाजूट बाँधे वह शिव विहार कर रहे हैं। हे पार्वति ! यह तेरे मान का ही दुष्फल है। तू ही देख ले।

कति नु न कथितं मम मतिमथितं गिरिजेऽनुसरं गिरीशम्।
स्मरशरविद्धं प्रणयनिबद्धं प्रवदसि च स्वमनीशम्॥ २
अरिकरि०।

जया कहती है पार्वती से कि मैंने खूब सोच-विचार कर तुमसे कितनी वार नहीं कहा कि तुम शिव जी का अनुसरण करो। क्योंकि तुम अपने आपको कामपीड़ित तथा शिव-प्रेम में आसक्त तथा अपने देह व मन को अनीश्वर बतलाती हो (क्योंकि तेरे देह व मन तो शिवाधीन है)।२

धवलं वसनं कृतविधुहसनं सितनिशि सखि ! परिधेयम्।
किङ्किणिकाऽऽस्ये नवरवलास्ये मृगमदरज इह देयम्॥ ३
अरिकरि०।

हे पार्वति ! (जब तू शिव जीके पास) चाँदनी रात में अभिसरण करे तब चन्द्र-सदृश सफेद कपड़े (पहिन लेना) तथा अपनी मेखला की ध्वनि करने वाली किंकिणियों के छेदों में कस्तूरी का चूरा भर देना (जिससे चलते समय ध्वनि न निकले)।३

---

१. पुर ख०। २. पश्यति ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

सति रतिकाले लास्यसि बाले ! स्फटिकगिराविव शम्पा।
पुरहरहृदये रतिरणविजये पुरुषायितधृतकम्पा॥ ४
अरिकरि०।

रति करने का जब समय आयेगा तब तू महादेव जी की छाती पर रतिक्रीड़ा में निर्दयता से प्रवृत्त हुई पुरुषायित करते हुए काँपती हुई ऐसी लगेगी जैसे स्फटिक पर्वत पर बिजली कौंध रही हो।

रजनीशेषं विगतनिमेषन्नयति कथञ्चिदधीरम्।
मां नय तां प्रति मारुत ! सम्प्रति कथयति चेति समीरम्॥५
अरिकरि०।

महादेव ने तेरे विरहमें (जब तू रतियुद्ध में उन्हें परास्त करके चली आयी तब) शेष रात्रि जागते-जागते ही विता दी, तथा वायुदेव से प्रार्थना की कि तू मुझे उड़ा कर पार्वती जहाँ है वहाँ पहुँचा दे।५

यान्ति च दूरन्मुनयोऽनूरुं पश्य जपासुमभासम्[1]।
लघु चलहृदयं प्रकुरु च सदयं मा तनु पर परिहासम्॥ ६
अरिकरि०।

(देखो पार्वती ! प्रातःकाल हो गया) मुनिगण आश्रम से दूर नित्यकृत्य के लिए जाने लगे। जपाकुसुम सदृश सूर्य को देखो, तुम अपने चंचल हृदय को दया सहित शीघ्र बना लो तथा महादेव के साथ अब परिहास करना छोड़ दो।६

विगतविलम्बन्दधदवलम्बं स्तनघटमपि रतिपूरे।
अद्भुतरचनं सुचिरमवचनं गिरिशो मज्जतु दूरे॥ ७
अरिकरि०।

(इस प्रकार महादेव जी के पास जाने पर) वे शिव जी तुम्हारे स्तन-घट को जिसका वे अवलम्बन ले रहे थे उसे विना विलम्ब के रति-नदी के प्रवाह में बिना बोले देर तक डुवा दें, तुम्हारे स्तन-घट की रचना बड़ी अद्भुत है—वर्णनातीत है।७

---

१. लासम् ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीकविरामे हरपदकामे भणति परमभणनीयम् ।
धनजनजातं शङ्कितपातन्न सुखं हृदि गणनीयम् ॥८
अरिकरि० ।

कविवर रामजित कवि कहते हैं—मैं शिवचरणानुरक्ति की कामना से उनकी स्तुति करता हुआ एक बात जो अत्यन्त आवश्यक रूप से कथनीय है वह कहता हूँ कि जिसके विनाश की शंका है अर्थात् विनश्वर धन-कामना तथा जन-कामना के सुख में शिवभक्त को कभी न पड़ना चाहिए।८

कुञ्जे कुञ्जे सरसि सरसि ग्रावणि ग्रावणि त्वा-
मन्विष्याऽसौ स्वपिति विपिने खिन्नखिन्नः श्लथाङ्गः।
स्वप्नेऽपि त्वां कथमपि चिरात्प्राप्य तत्राऽसहिष्णो-
र्दैवाज्जातैर्झटिति गिरिजे! बोध्यते[1] स प्रलापैः॥७

हे पार्वती ! प्रत्येक कुंज में प्रत्येक सरोवर पर, प्रत्येक शिला तल पर तथा वन में घूम-घूम कर जब शिव जी तुम्हें न पाकर दुःखी हो जाते हैं तब थक कर सो जाते हैं, पर स्वप्न में जब तुम उन्हें दिखाई पड़ती हो तो वहाँ भी तुमसे अधिक देर मिल नहीं पाते क्योंकि स्वप्न समागम को असहिष्णु दैव की मार से वे तुम्हें सोते-सोते पुकारने लगते हैं, प्रलाप करने लगते हैं, वे झटपट उठ बैठते हैं, निद्रा या स्वप्न भी पूरी तौर से पूरे नहीं हो पाते।७

वहति दहनं[2] गोधौ[3] ज्ञात्वा तव स्तनकुङ्कुमम्,
स्पृशति फणिनं श्यामं वामे[4]! करैः कबरीभ्रमात्।
तव हृदयगां कस्तूरीं वा विचिन्त्य चिरं गले,
स्थिरयति गरं मुग्धे! मुग्धो हरो हरिणीक्षणे! ॥८

हे वामे ! पार्वति ! शिव जी ललाट पर जो तृतीय नेत्र धारण किये हुए हैं वह्नि समझकर नहीं अपितु तुम्हारा स्तन कुंकुम समझ कर तथा वे जो कृष्ण नाग को हाथ से छूते हैं वह भी सर्प जान कर नहीं बल्कि तुम्हारा केशपाश समझ कर। वे कण्ठ में जो विष धारण किये हुए हैं वह भी विष समझ कर नहीं किन्तु तुम्हारे वक्षःस्थल की कस्तूरी है यह समझ कर। हे मुग्धे ! तथा हरिणनेत्रे पार्वति ! महादेव जी बस मुग्ध होकर संसार को तेरे ही उपकरणों के रूप में या तेरे ही रूप में देखते हैं।८

१. बाध्यते ख०। २. गहनम् क०। ३. ललाटे इत्यर्थः। ४. कामे क०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दहतु दहतु नूनन्तत्तनुं चन्दनं द्राक्,
तुदतु तुदतु चेतस्तस्य बाला मृणाली।
विधुमलयसमीरौ तां[1] कथन्तस्य मूर्तिम्,
व्यथयत इति चित्रं चित्तमत्राश्नुते[2] मे॥९

चन्दन यदि उनके शरीर को जलाता है तो जलाये तथा बाल मृणालिनी उनके चित्त को वेदना पहुँचाती है तो पहुँचाये। किन्तु यह चन्द्रमा यह मलयानिल उनके शरीर को व्यथित करते हैं यही देख कर आश्चर्य होता है, (क्योंकि चन्द्रमा उनके भाल-स्थल पर विराजमान है, नित्य सहचर हैं उससे दुःख कैसा ? रहा मलय समीर, उसको मलयादिदेशावलम्बी भुजंग ही पी जाते हैं क्योंकि वे 'पवनाशन' हैं। अतः उन दोनों से शिव जी को कष्ट कैसे होता है) यही सोच कर मेरा चित्त आश्चर्य में डूब जाता है।९

मन्दरे कन्दरं सुन्दरं मन्दिरं,
कल्पिताऽनल्पपुष्पाणि तल्पोत्तमम्।
दीप उद्दीपितश्चन्द्र उन्निद्रदृक्,
पङ्कजे भोगसामस्त्यमस्त्यत्र तत्॥१०

हे पार्वति ! शिव जी के कैलास या मन्दर पर्वत पर भोग की सारी सामग्री विद्यमान है, मन्दर पर्वत की कन्दरा ही सुन्दर मन्दिर है, तथा वहाँ विछाये करोड़ों फूलों की उत्तम शय्या है, चन्द्रमा ही प्रदीप्त दीपक है। खिले कमल ही सुगन्धि प्रदान करते हैं और वहाँ बैठे भौंरे गूंज रहे हैं। इस प्रकार शिव जी ने तेरे भोग की सारी सामग्री उपस्थित कर रखी है (बस तेरे पहुँचने की देर है)।१०

स्मृत्याऽङ्कुरितो दृष्ट्या, द्विपत्रितः पुष्पितो वचसा।
हरकामकल्पशाखी फलितः, परिरम्भणे न ते भूयात्॥११

हे पार्वति ! भाग्य से तुम्हारी स्मृति मात्र से शिव जी का कामरूपी या कामना रूप कल्पवृक्ष अंकुरित हो चुका है। तुम्हारी दृष्टि से उस पर (पत्ते) (किसलय) आ गये हैं। तुम्हारी वाणी से पुष्पित हो गया है, बस (ऐसी कृपा करो कि) तुम्हारे आलिंगन से वह फलित हो उठे।११

---

१. तं क०। २. अश् (संघात) धातोः रूपम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आशाभिर्गिरिशस्य मानिनि ! समं यात्यस्तशैलं विधु-
र्नैष्ठुर्येण सहैव ते समुदितः प्राच्यामणुः शोणिमा।
कम्पन्द्राक् कुमुदेव सार्द्धमपि मे यात्यद्य हृत्कैरवम्,
तत् कालो न विलम्बितुन्द्रुततरं श्रीशङ्कर प्रीणय॥ १२

हे मानिनि पार्वति ! महादेव की आशाओं के साथ यह चन्द्रमा छिपने जा रहा है, अस्त हो रहा है। तेरी निष्ठुरता के साथ प्राची दिशा में अरुणोदय हो रहा है। (प्रातःकाल हो चला अब तो मान छोड़ दे) तेरा हृदय रूपी कैरव कुमुद के साथ कम्पित हो रहा है, अतः अब देर न कर, जल्दी-जल्दी पहुँच कर शंकर भगवान् को आनन्दित कर।१२

सामेरीरागेण गीयते

'क्षिपति स शयनन्दिशि दिशि नयनन्नयति भवान्यविरामम्।
श्वसितन्तनुते नर्म न मनुते ननु ते स्मरति निकामम्॥१
शशधरदीपे' ज्वलति समीपे शिशिरशिलातलतल्पे।
'वसति भवो भवतीविरहादतितापकरेऽनलकल्पे॥ ध्रुवपदम्

वियोगोन्मत्त हर वर्णन

हे भवानि ! वह भगवान् शिव शयन-शय्या का परित्याग कर घूमने लगते हैं, चारों तरफ आँखें फाड़-फाड़ कर तुझे निरन्तर ढूँढ़ते हैं। लम्बे-लम्बे श्वास लेते हैं, गणों के नर्म वाक्य नहीं सुनते, तुम्हारी हर समय याद करते हैं।१

ठण्डी शिला रूपी शय्या के समीप चन्द्र रूपी दीपक के जलते हुए भी (ऐसी शिशिरप्रद अवस्था में भी) तुम्हारे विरह में उस शय्या को अग्निकुण्ड समझ कर छोड़ देते हैं।

---

१. वसति तवैव भवो विरहात् ख०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सितकरभासं चुम्बति साऽऽशं गौरतया तव तुल्याम्।
प्रविशति गेहं भगवति! सेहं याति च विहरणकुल्याम् ॥ २
शशधर०।

चन्द्र की चाँदनी को तुम्हारे शरीर जैसी सफेदी को (तुम्हारे रूप में मान कर) चूमते हैं। बड़ी तैयारी से (तुमसे मिलने) घर में जाते हैं। या (तुम्हें न पाकर) मन्दाकिनी तट पर विहार करने चल देते हैं।२

वहति च कोऽहं क्षणमिति मोहं वियदालिङ्गति बाले!
भ्रममयभवतीशतसतताऽद्भुतभूमिमकाले ॥ ३
शशधर०।

थोड़ी देर के लिए वे शिव सोचते हैं कि मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ, क्या हूँ, इस प्रकार अपने को भूल कर मोह दशा (काम की ९म दशा) को, हे बाले! पार्वति! प्राप्त होते हैं तथा भ्रान्ति से आकाश में चारों ओर तुम्हारे ही सैकड़ों रूपों को अद्भुत रूप में खड़ा देख कर कोरे आकाश का जब-तब (अकाल में) आलिंगन करने लगते हैं।३

गमयति समयं स तथा हृदयं सदयं भवति ममाऽपि।
गिरिजे मतिमति! न विना भवतीमितरा हरहृदि काऽपि ॥ ४
शशधर०।

हे पार्वति! वे अपना समय इतने कष्ट में काटते हैं कि उस दशा को देख कर मेरा भी हृदय पिघल जाता है। हे बुद्धिमति! गिरिजे! तेरे सिवाय अन्य कोई भी महादेव के मन में नहीं है (अतः मान करना व्यर्थ है)।४

बहु हा! रावं ज्ञपयति भावं जड इव भवति! कदाचित्।
सुरनरदानवनवललना न शिवं सखि! सुखयति काचित् ॥ ५
शशधर०।

हे सखि! वे शिव अत्यधिक हा! पार्वति! हा! पार्वति! यों कहते हुए अपने भाव को (प्रेम को तुम्हारे प्रति) संसार में प्रकट करते हैं तथा जडोन्मत्त से हो जाते हैं। अधिक क्या—देवांगना, दानव ललना या कोई भी मानवी उन्हें (तेरे सिवाय) चैन नहीं पहुँचा सकती। (इस पद में "बहुहारावम्" यह पद भाव का विशेषण है तथा बहुव्रीहि समास है)।५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi.

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वीणाक्वणने वेणो रणने कलकण्ठीकलनादे।
स्वरमिव[1] तव स विभाव्य विलासिनि! निपतितुमिच्छति पादे ॥६
शशधर०।

हे विलासिनि! जब वीणा बजती है या वंशीध्वनि होती है या कोयल बोलती है, तब तुम्हारा स्वर समझकर तुम्हारे पैरों पर गिरना चाहते हैं।६

कृपय कृपावति! नतिनुतिभिर्मम मृडय मृडन्तदवस्थम्।
प्रत्ययमयसे न वचसि यदि मे पृच्छ मनः स्वमुरःस्थम् ॥ ७
शशधर०।

हे दयामयि! मेरी, नमस्कार सहित इन अपनी स्तुतियों को सुन कर इस हालत में पड़े शिव को (चल कर) सुख दो। यदि तुम्हें मेरे कहने का विश्वास नहीं तो स्वयं अपने दिल पर हाथ रख कर अपने मन से ही पूछ लो।७

श्रीकविरामे कलिजयकामे गणयति गुणगणमैशम्।
मोहन्तिमिरन्नश्यतु सुचिरं चन्द्रोदय इव नैशम् ॥ ८
शशधर०।

इस प्रकार रामजित कवि कलिकालुष्य से बचने के लिये भगवान् शिव का गुणानुवाद या स्मरण कर रहे हैं, अतः उनका तथा जो इस स्तुति का पाठ करें उनका मोहपाश सर्वदा के लिए ऐसे ध्वस्त हो जाये जैसे चन्द्रोदय से रात्रि का अन्धकार दूर हो जाता है।८

तमःपुञ्जे कुञ्जे सुरभि[2] सुमशट्याऽऽर्दिततनु-
र्बहिर्ज्योत्स्नाज्वल्लाकवलिततरः शैलशिखरे।
स्रवद्वार्भिः शीतै[3]र्हिमगुमणिभिर्भिन्नहृदयो,
न कुञ्जे नारण्ये न गिरिशिखरे शान्तिमयते ॥ १३

वे शिव जी! तमःपुंज कुंज में अर्थात् अँधेरे में सुगन्धित फूलों के सुगन्ध की लहरों से पीड़ित होते हैं तथा कैलाश की चोटी पर चन्द्र की चाँदनी उन्हें काटने दौड़ती है। और कैलाश के जंगल में जल टपकाने वाली चन्द्रमणियों से उनका हृदय पीड़ित होने लगता है। इस प्रकार उन्हें न कुंज में चैन, न जंगल में सुख, न पर्वत की चोटी पर सुख, कहीं भी शान्ति नहीं मिल रही है।१३

---

१. स्मर इव क०। २. सुरति ख०। ३. हिमगुमणिभिः चन्द्रकान्तमणिभिः इति भावः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वनात्कुञ्जं कुञ्जाद् गिरिमपि गिरेर्देवसरितम्,
सरित्पार्श्वात् निम्नं भजति तत उच्चैः स्थलमपि।
विमुह्यत्युत्ताम्यत्यथ पतति रोदित्यपि शिवः,
पुनर्धैर्यन्धत्ते पुनरपि विधत्ते स शयनम्॥ १४

शिव वन से कुंज की ओर जाते हैं, कुंज से कैलासगिरि पर, वहाँ से देवनदी पर, देवनदी से मैदानों में (उपत्यका या सम भूमि में,) वहाँ से गिरिनितंबों में या चोटियों पर घूमते फिरते हैं। कभी मूच्छित होते हैं, कभी घबराते हैं, कभी गिर पड़ते हैं, कभी रोने लगते हैं फिर सँभलते हैं। और अन्त में निराश हो सो जाते हैं।१४

किं स्त्रीयन्ते शिरसि मम किं स्त्रीयमेषाऽस्ति मौलौ,
भूतिश्चास्या भव शुभतरा भूतिरेवाऽत्र भव्या।
पृष्टो गौर्या गिरमिति[1] मुदे व्याहरन् वक्रवक्राम्,
गङ्गां निन्दन् रहसि विहसन् पातु वश्चन्द्रचूडः॥ १५

इति श्रीगीतगिरीशे[2] वयस्यारहस्योक्ति-
नाम पञ्चमःसर्गः
(प्रश्नोत्तरच्छल)

पार्वती जी ने शिव जी से पूछा कि क्या यह जो तुम्हारे सिर पर स्त्री है, वह तुम्हारी पत्नी है? शिव जी कहते हैं कि मेरी यह कुछ नहीं है। वह मुकुट के ऊपर स्त्री की ही आकृति है। (अथवा अरे यह क्या! क्या मेरे सिर पर कोई स्त्री है, अर्थात् मेरा ध्यान तो इस ओर तुम्हारे पूछने पर गया है, तथा यह "स्त्री" निन्दित गर्हणीय स्त्री है। जो इस प्रकार पर पुरुष के सिर पर चढ़ने का साहस करती है) (यह प्रश्न चन्द्रकला को लेकर है, उत्तर गंगा को लेकर है)। पार्वती फिर कहती हैं—हे शिव! इस चन्द्रकला रूप स्त्री की मूर्ति का ज्योत्स्ना रूप भूति (वैभव) तो बड़ी अच्छी है। शिव जी उत्तर देते हैं कि (हम श्मशानवासी हैं) अतः यहाँ तो भस्म ही उत्तम है। हमें यही पसन्द है। इस प्रकार पार्वती के पूछने पर टेढ़ा-टेढ़ा खुशी के लिए उत्तर देते हुए गंगा की निन्दा करते हुए एकान्त में बैठकर पार्वती से मजाक (परिहास) करते हुए भगवान् चन्द्रशेखर तुम्हारी रक्षा करें।१५

इति पञ्चमः सर्गः

---

१. अति ख०। २. महाकाव्ये, इत्यधिकं पदम् ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षष्ठः सर्गः

उत्थायोत्थाय[1] तत्रैव पतन्ती गतिनिःसहा।
उमाऽऽख्यत् स्वदशां सख्या दक्षा दक्षाऽध्वरद्रुहि॥ १

कुशल उमा उठ-उठ कर चलने में असमर्थ हो वहीं गिर-गिर पड़ती हैं। अतः उन्होंने सखी के द्वारा अपनी दशा का कथन शिवजी से किया।१

असाउरीरागेण गीयते

कलयति रुचिरुचिरं सकलङ्कम्।
विरहिचितामिव , चन्द्रमशङ्कम्॥ १
भूतपते! भूतपते! खिद्यति गिरिजा दारुवने॥ ध्रुवपदम्

असाउरी राग से गेय

शिव भगवान् चाँदनी से मनोहर कलंकयुक्त चन्द्रमा को निश्शंक होकर इस कदर धारण करते हैं जो विरहिगणों की चिता के समान (भस्म होने पर सफेद आकार का) है। हे शिव जी!, देवदारुवन में वैठी हुई पार्वती तुम्हारे विरह में खिन्न अति खिन्न हो रही है।१

मलयपवनधुतकमलमधूली ।
गिरिजा हृदि पितृवनगतधूली॥ २
भूतपते०।

पार्वती मलय वायु से कमल के पराग को (जो उड़ कर आता है) हटा देती हैं, तथा श्मशान का भस्म लपेट लेती हैं।२

---

१. उच्छायोच्छाय क०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चलति च विश्लथतरपदचारा।
वितनुग्रहकृतविविधविकारा ॥ ३
भूतपते०।

पार्वती चलते समय डगमगाती हैं, तथा काम की पीड़ा से उसका हृदय बड़ा दुःखी है।३

मदनदवथुधूमलितमृणालम् ।
तुदति[1] श्यामलभुजग इवाऽलम्॥ ४
भूतपते०।

मदन अग्नि से धूमायित मृणाल पार्वती को काले सर्प के समान काटता है।४

स्मरमृगयोरधिमिलदिव जालम्।
मनुते शैवलमगदुहिताऽलम्॥ ५
भूतपते०।

वह नगाधिराजतनया शैवल (सेवार) को कामदेव और मृग का मिला-जुला जाल-सा समझती है।५

स्वदृशा दिशि दिशि मधुकरचित्रम्।
चित्रयतीव शिवा सुविचित्रम्॥ ६
भूतपते०।

अपनी आँखों से वह पार्वती प्रत्येक दिशा में भौंरे का विचित्र चित्र चित्रित कर देती हैं, अर्थात् नेत्र जिधर डालती है उधर ही नेत्रों द्वारा भौंरे-से दिखाई पड़ने लगते हैं अर्थात् उसके भौंरों जैसे काले नेत्र हैं उनसे हर ओर भौंरे दिखाई पड़ने लगते हैं।६

व्यथयति कर्वुरिकेव कराला।
रजनिरुमामुडुकीकसमाला ॥ ७
भूतपते०।

रात्रि में चमकने वाले तारे उसे लगते हैं जैसे वह कंकाल की (हड्डियों की) माला हो। अतः काली सफेद-रात भी उसे व्यथित करती है।७

---

१. नुदति ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri.

श्रीकविरामरचितमिति गीतम्।
कुसुमाञ्जलिरिव हरमुपनीतम्॥ ८
भूतपते०।

महाकवि राम द्वारा विरचित यह गीत कुसुमाञ्जलि के समान महादेव के चरणों में अर्पित है।*८

पलाशं चापं ज्या विशमपि शरः कुन्दकलिका,
मधूलीधूली यन्निजकरदृढीकारचतुरा।
ततो भित्त्वा भित्त्वा सुरनरमनांस्यद्य मदनो,
विधत्ते वेद्धुन्तां भृशकृशतनुं भर्ग! खुरलीम्॥ २

कामदेव पलाश पुष्प का चाप बना कर, कमल की डंडी की प्रत्यंचा बना कर, कुन्द पुष्प को वाण बना कर, कमलों या पुष्पों के पराग की धूली से अपने खिन्न करों को दृढ़ करके एवं सुर-नर गणों के मनों को भेद कर अभ्यास करके उस कृशकाय पार्वती को वींधने के लिए सारी तैयारी करता रहता है।२

शङ्के शङ्कर! शीतदीधितिकलाः काकोलकीलामयी-
रेताः पञ्चदशाम्बरेऽमृतमयीन्त्वद्भालगामेकिकाम्।
यज्ज्योत्स्नागरघूर्णितेव गिरिजा सद्यः परान्निर्वृतिम्,
प्रत्यङ्गस्मरणे तवाऽलिकशशाङ्कांशं विचिन्त्याऽश्नुते॥ ३

हे शिव! मैं चन्द्रमा की १५ पन्द्रह कलाओं को कालकूट की ज्वालाएँ या कालकूट की ही रेखाएँ मानता हूँ। जिनमें से विषमयी पन्द्रह कलाएँ तो आकाश में हैं तथा सोलहवीं एक कला आपके मस्तक पर है जो अमृतमयी है क्योंकि चन्द्रिका चन्द्रिका रूपी विष के कारण मूर्च्छित हुई गिरिजा जब तुम्हारे अंगों का स्मरण करती हुई भालस्थलवर्ती आपकी चन्द्रकला का स्मरण करती है तब बड़ा ही सुख और आनन्द अनुभव करती है। (इस रूप में कील व काकोल शब्दों के अर्थ ज्ञान के लिए "शंकावपि द्वयोः कीलः" यह तथा "पुंसि क्लीवे च काकोलकालकूटहलाहलः"। यह अमरकोश स्मरण रखना चाहिए।३

---

* इस गीत में वियोगिनी की दशा वर्णित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

प्रणयकलहकाले याति वामे! प्रकुप्ये-
तरदिशि गिरिजाङ्घ्रावर्द्धनारीश्वरोऽयम्।
कृतककनकवृक्षे दक्षिणो दक्षिणं स्वम्,
पदमनुवलयन् वः शङ्करः शङ्करोतु ॥ ४

इति श्रीगीतगिरीशे दुर्गादशानिर्देशो
नाम षष्ठः सर्गः ॥६॥

प्रणय-कलह में कुपित होने से जब पार्वती का वाम चरण दक्षिण की ओर चलने को बढ़ता है तब चतुर शिव संकल्प शक्ति से उत्पादित धतूरे के पेड़ में अपना दाहिना पैर अटका देते हैं, जिससे पार्वती का वाम चरण दक्षिण की ओर आगे नहीं बढ़ सकता। ऐसे चतुर शिव आपका कल्याण करें।४

इति षष्ठः सर्गः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

सप्तमः सर्गः

अथ शुभसमयेऽस्मिन् चन्द्रिकाक्षीरपूरम्,
विकचकुमुदबालान् पाययन्ती दिगैन्द्री।
हिमकरकुचमेकं व्याचकारोत्सुका सा,
स कविगुरुसमीपेऽप्यङ्ककस्तूरिकाक्तम्॥ १

इस सायंकाल के शुभ समय में पूर्व दिशा रूपी जननी ने चाँदनी रूपी दूध, विकसित कुमुद कन्द रूपी अपने बच्चों को पिलाना शुरू किया। अर्थात् सायंकाल में कुमुद खिल उठे। दूध पिलाते हुए पूर्व दिशा ने अपने चन्द्रमा रूपी एक स्तन को जिस पर कलंक रूपी कस्तूरी का लेप हो रहा था, उसे उत्सुकता सहित बहस्पति के ही समीप (बच्चे के प्रेम के कारण गुरुओं की लज्जा को छोड़ कर) उघाड़ दिया, अनावृत कर दिया।१

उदयन्तं विधुं वीक्ष्य वयस्यां गिरिजाऽब्रवीत्।
तमः पातुस्तमः स्वच्छोदरेऽस्याङ्क इवेक्ष्यते॥ २

पार्वती ने चन्द्रमा को उदित होता देख कर अपनी सखी जया से कहा कि सखि! देखो, अन्धकार का पान करने वाले चन्द्रमा के पेट में वही अँधेरा कालिमा के रूप में दिखाई पड़ रहा है।२

नूतना पूतनेवेयन्दिगैन्द्री सखि! भाति मे।
यद् घूर्णयति बालां मां क्षरन्तीन्दुस्तनाद् विषम्॥ ३

हे सखि! यह पूर्व दिशा तो नयी (नये रूप में प्रकट हुई) पूतना राक्षसी-सी दिखाई पड़ती है जो कि यह चन्द्रमा रूपी स्तन से (चाँदनी रूप में) विष को टपकाती हुई मुझ बालिका को मूर्च्छित कर रही है अर्थात् मुझे सिर में चक्कर आने लगा है।३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दीर्घस्य श्वसितस्य मे पुर इमं कृत्वा करे दर्पणम्,
सम्पूर्णं प्रतिबिम्बिताऽमृतकरं तिष्ठाऽऽलि! तावत्क्षणम्।
वाष्पैः प्राक् मलिनीकरोम्यमुमहं येन द्रुतं श्यामली-
भूतो राहुरिवाऽधमो विधुरयं भूयोऽपि नाऽऽलोक्यते॥ ४

हे सखि! तुम मुझ वियोगिनी के लम्बे श्वासों के सामने इस दर्पण को पकड़ कर थोड़ी देर खड़ी रहो, जिससे जब तक उस दर्पण में चन्द्रमा पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित हो जाय, तब तक मैं इसे अपने आँसुओं (तप्त तैल जैसे आँसुओं) से मलिन कर दूँ, झुलसा दूँ, जिससे यह चन्द्रमा (झुलस कर) राहु की तरह काला हो जाय और फिर इसकी संतापक शक्ति नष्ट हो जाने से यह हमें पीड़ित न कर सके।४

स्मरसंज्वरखिन्नया मया या, हरमाकारयितुं जया न्ययोजि।
मम सा स च दुर्विदग्धदैवान्न दृशोर्गोचर इत्यवोचदम्बा॥ ५

माता पार्वती कहने लगीं कि कामज्वर से पीड़ित एवं दुःखी मैंने महादेव जी को बुलाने के लिए जया को नियुक्त किया था किन्तु मेरे दुर्भाग्य से न वह ही लौट कर आयी और न वे ही पधारे (समझ में नहीं आता कि क्या हुआ। कम से कम जया को तो लौट कर आना ही चाहिए था)।५

विराडीरागेण गीयते

मत्तमधुकेसरिप्रखरनखकिंशुकम् ।
भीषयति विरहिणीहृदयमतिहिंस्रकम्॥ १
कामये कमिह वरदं विना मदनमदर्दिता॥ ध्रुवपदम्

विराडीराग में गेय

मत्त वसन्त ऋतु रूपी केसरी के नख जैसा यह टेसू (पलाश) का फूल वियोगिनी स्त्रियों के लिए हिंसक बना हुआ, उनके हृदय को डराता है।१

मैं वरद शिव के बिना मदनार्दित अवस्था में अन्य किसकी शरण में जाऊँ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

द्रुततरं गतवती मम वचनहारिणी।
सा समयलङ्घिनी[1] किमिति सहचारिणी॥ २
कामये०।

वह जया मेरा सन्देश लेकर लपकती चली गयी थी, फिर वह मेरी सहचरी क्यों, समय पर नहीं लौटी ?।२

विकटकण्टकविपिनपद्धतावद्य मे।
किं स्वयं तदनुगमनाय नोत्पद्यते॥ ३
कामये०।

क्या मुझे आज कंटकाकीर्ण मार्ग से स्वयं अपनी सखी या शिव जी के अनुगमन के लिए जाना उचित नहीं, अर्थात् उचित ही है।३

ईशितरि लङ्घयति समयमहमालये।
स्तनजघनभरमधिकभारमिव चालये॥ ४
कामये०।

शिव जी जब अपने वचन या काल का प्रतिपालन नहीं करते उस अवस्था में मुझे अपना शरीर भी अतिरिक्त भार की तरह निष्फल प्रतीत होता है।४

यत्र मम मानसी वृत्तिरधिकाऽऽश्रिता।
तन्मनसि कामिनी काऽपि सुभगाऽऽस्थिता॥ ५
कामये०।

जहाँ मेरी मानसी वृत्ति अधिक लगी हुई है, उस महादेव का मन तो मालूम पड़ता है किसी अन्य कामिनी के द्वारा घिरा हुआ है।५

---

१. लङ्घनम् ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

अहह ! पुरदारणः प्रणयिनीदेवता।
साऽपि तुष्यति न मे स्मरणनतिसेविता ॥ ६
कामये० ।

दुःख है कि शिव जी की वह प्रिया प्रणयिनी भी मेरे द्वारा बार-बार मनाने व सिर झुकाने पर भी प्रसन्न नहीं हो रही है (यदि वह शिव जी को यहाँ आने की अनुमति देती तो वे आ जाते)।६

शशिकिरणवह्निमपि मृतिकृते प्रापितम्।
स्फुटति हृदयन्न मम मदनबाणतापितम् ॥ ७
कामये० ।

यद्यपि मेरी मृत्यु के लिये चन्द्रमा की किरण रूपी अग्नि भी पहुँचाई गयी है फिर भी काम के वाण से संतप्त मेरा हृदय नहीं फटता।७

रसिकजनसुखदकविरामवचनस्रजा ।
भवतु भवसेविनाम्मनसि शमलोन्मृजा ॥ ८
कामये० ।

रसिक मनुष्यों के लिए रामकवि द्वारा निर्मित इन वचनों (काव्य या गीतों) की माला से शिव-भक्तों के हृदयों का कालुष्य या पाप दूर हो जाये।८

वैज्ञानाऽग्निरसौ वियोगदहनो वेदी ममोरः पिको,
होता यज्ववरो मधुः स शमिता कामः समित् केसरम्।
उद्गाता मधुपोऽत्र चन्दनरसः सर्पिःशिवप्रीतिकृद्-
मत्प्राणैः पशुभिर्भविष्यति महायज्ञोऽश्रुनद्यास्तटे ॥ ६

यह वियोगवह्नि तो यज्ञाग्नि है। वेदी मेरा वक्षःस्थल है। कोकिल यज्ञ का होता है, यजमान वसन्त ऋतु है, कामदेव शमिता-अध्वर्यु-विशेष है, केसर यज्ञ की समिधाएँ हैं, भौंरे उद्गाता हैं, चन्दन रस घी है, मेरे प्राणरूप पशुओं की इस शिव जी को खुश करने के लिए रचे गये महायज्ञ में आहुति दी जायगी तथा ऐसा यह महान् यज्ञ अश्रु नदी के पवित्र तट पर किया जायगा।६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

फुल्लाऽशोकपलाशपुष्पनिकरोऽग्निश्चन्द्रिकाऽऽज्याहुति -
प्रोद्भूतो मलयानिलेन सुहृदा फूत्कृत्य संवर्द्धितः।
तत्कुन्तायितकेतकैर्मुहुरसौ निःकृष्य चण्डाऽनले,
चण्डालस्मरकालखण्डमधुना निर्भज्य निर्भुज्यताम् ॥ ७

खिले हुए अशोक, पलाश आदि पुष्पों की ढेरी ही अग्नि है, वह ज्योत्स्ना रूपी घृताहुति से जलायी जा रही है, मलयानिल की फूकों से या पंखे की हवा से प्रज्वलित की गयी है, इस अग्नि में बेलचे के समान या लम्बी आगे से मुड़ी अग्नि के अंगारे खींचने की शलाका के समान केतकी के फूलों के द्वारा इस प्रचण्ड अग्नि में सेंके हुए या भुने हुए चाण्डाल कामदेव रूपी काल खण्ड को या कामदेव के प्रहरण या शस्त्रभूत कालखण्ड को (टेसू के फूल को जला कर) खा डालो।७

किं गोत्रस्खलिते तया सुभगया बद्धो निरुध्य प्रियः,
किंवा काऽपि चकार विघ्नमसुरी भ्राम्यद्भुजङ्गीभ्रुवा।
औदासीन्यमथाऽपि वा मयि गतः किंचिन्मदागःस्मरन्,
यत्कैलाशविलाससानुलवलीवल्लीतलेऽप्येति न ॥ ८

पार्वती सोच रही है कि—क्या उस दूसरी ने गोत्रस्खलित होने पर रोक कर शिव जी को कहीं बाँध दिया या वन्द कर दिया, या किसी अन्य देवपत्नी ने अपनी कुटिल भ्रू के द्वारा आने में विघ्न डाल दिया या फिर शिव जी मेरे किसी अपराध को याद कर मुझसे विरक्त हो गये ? जो कि वे कैलाश पर्वत की चोटी पर खिली लवली लता के कुंज की ओर भी कभी आते दिखायी नहीं देते। (मैं तो उधर टकटकी लगा उन्हें देखती रहती हूँ पर वे नहीं देखते)।८

सखीन्नतमुखीं वीक्ष्य विनेशं समुपागतम्।
रमितं गङ्गयाऽऽशङ्क्य शिवं दृष्ट्वेव साऽब्रवीत् ॥ ९

थोड़ी देर बाद ही पार्वती ने जया को शिव जी के विना आती हुई तथा सिर नीचे किए हुए (दुःखी) देखा। तब शिव जी को गंगा ने अपने जाल में फँसा लिया, यह समझ कर शिव जी को सामने खड़ा हुआ-सा मान कर वह कहने लगी।९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कल्याणरागेण गीयते

कुसुमशरज्वरहरमुखचन्द्रा ।
अधरसुधोपनयनहृततन्द्रा ॥ १
सा हि सुरसरिदन्धकरिपुणा ।
विहरति रहसि रतिनिपुणा॥ ध्रुवपदम्

कल्याण राग से गेय

कामपीड़ा को अपने मुखचन्द्र से हरनेवाली तथा अधरामृत पान करा कर आलस्य भगानेवाली (मस्तकस्थ गंगा है)।१

वह ही गंगा महादेव के साथ एकान्त विहार करती हुई रति-कलाओं में उन्हें फँसाए हुए है।

भ्रूयुगरतिरणसमुचितचापा ।
शङ्करकरसरसिजहृततापा[1] ॥ २ सा० हि०।

उस गंगा की भौंहें ही रतियुद्ध में धनुप की तरह तन जाती हैं। तब महादेव अपने कर-कमलों से उसका कोप पैर दबा कर या हाथ जोड़ कर शान्त करते हैं।२

नयनतरङ्गितशरशतधारा ।
खरनखरायुधविहितविकारा ॥ ३ सा० हि०।

गंगा अपने कटाक्षों द्वारा महादेव पर बाणवर्षा करती हैं तथा अपने तेज नखों के द्वारा भी उन्हें सताती हैं।३

यौवनकरिकुम्भितकुचताला ।
कबरीविजितमदनकरवाला ॥ ४ सा हि०।

यौवन रूपी हाथी के कुम्भ के समान प्रतिनायिका गंगा देवीके कुच थे। तथा उसके केश भार के सामने काम की तलवार भी कुण्ठित थी (अर्थात् उसके कच-ककच तलवार से भी अधिक गहरा प्रहार करने वाले थे)।४

---

१. कुङ्कुमरसकृतहस्तावापा क०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकटविकटपुलकाऽङ्कुरकूर्मा ।
विकचकेलिजलरुहधृतचर्मा ॥ ५ सा हि० ।

विकट पुलक रूपी अंकुर (सात्त्विक भाव से) गंगा के उठ रहे थे तथा महादेव के साथ काम क्रीड़ा करते हुए उसने खिले कमलों को अपने शरीर पर (संताप शान्त्यर्थं) धारण किया हुआ था।५

परिरम्भण[1] पीडितहरहृदया ।
दन्तदंशकचकर्षणविदया ॥ ६ सा हि० ।

इस आलिंगन से उसने महादेव के वक्षःस्थल को निष्पीड़ित किया था तथा वह शिव को दाँतों से काटने तथा (निधुवन में) उनके बालों को खींचने में बड़ी निर्दय थी।६

स्मरसमरान्तजजलकणजाला ।
अलकलुलिततिलकाऽऽकुलभाला ॥ ७ सा हि० ।

एवं रतियुद्ध के अन्त में उसके शरीर पर पसीने की बूंदें चमक रही थीं, उसने अपनी अलकावली से (माथे का) तिलक मिटा दिया था तथा उसके ललाट (मुख) पर बाल बिखरे हुए थे।७

श्रीकविरामभणितरतिचरितम् ।
वर्द्धयते हरपदरुचिसरितम् ॥८ सा हि० ।

इस प्रकार रामकवि वर्णित रतिक्रीड़ा का यह विशद वर्णन भगवान् शिव के चरणों में अनुरक्तता रूपी नदी को प्रवाहित करने में पूर्ण समर्थ है।८

हरमुखप्रतिमोऽपि हलाहलप्रतिभटः समुदेत्य मुदे मम।
विधुरतृप्त[2] तरो विधुरव्यधैःप्रथयतेऽथ यतेरपि विक्रियाम्॥ १०

फिर पार्वती ने कहा कि यह चन्द्रमा महादेव के मुख जैसा (सफेद है) पर मेरे लिए तो हलाहल जैसा है एवं मेरे दुःख देने को ही यह उदित हो रहा है, विधुरों (वियोगियों) को मारते-मारते इसका पेट नहीं भरा है, अधिक क्या यह संयमी (यति शिव जैसों) को भी चंचल कर देता है।१०

---

१. परिरम्भन क०। २. नृत्य क०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

मल्लाररागेण गीयते

सुरसरिदलिके परिललदलके भ्रूयुगकृतभासने।
तनुते सरलन्तिलकमविरलं शरमिव सुशरासने ॥ १
कुरु ते केलीरमरवने प्रणयी पुरारिरनिशम् ॥ ध्रुवपदम्

मल्लार राग से गेय

(अब) गंगा तो (अपने) केशपाश करम्बित मस्तक पर एक सीधा तिलक (अपने शृंगार के लिए) बना रही है, उस तिलक की श्वेतिमा भ्रूयुगल से और भी बढ़ रही है, यह तिलक बीच में खण्डित नहीं है, मानों वह भ्रूयुग रूपी शरासन पर शर संधान कर रही है, प्रेमी महादेव देव-वन में रात-दिन काम-केलि करने में मस्त हैं।१

सकुसुमविसरे कुन्तलनिकरे सभगणरजनीसमे।
हीरकमुचितं रचयति ससितं ग्रहमिव रचनाक्षमे ॥ २

कुसुमांचित धम्मिल्ल ऐसे लगते हैं जैसे तारागणों से सुशोभित रात्रि हो। उस केशपाश में शिव जी हीरे के भूषण को अपने हाथ से लगा रहे हैं क्योंकि वह अभी और शोभायुक्त किया जा सकता है। वह हीरक मणि का भूषण ऐसा लग रहा है जैसे कोई सफेद ग्रह हो।२

द्युतिकर[१] कलिते तदुरसि ललिते कुचरथपदभासिते।
मृगमदरचितं समकरमुचितञ्जनयति सुमवासिते ॥ ३
कुरुते०।

वहीं शिव गंगा जी के उस वक्षःस्थल पर, जो कि चमक रहा है और ललित है तथा जिस पर कुच रूपी काम के रथ का पहिया शोभायमान है और जहाँ पर फूलों की माला लटक रही है, कस्तूरी के द्वारा मकरपत्रभंग बना रहे हैं (रथपद शब्द का अर्थ हमने वर्तुलाकृति के साम्य से कामदेव के रथ का पहिया लिया है)।३

---

१. द्युतिभर ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मेचकवसने घनचयहसने कटितटरुचिपोषणे।
तडिता तुलितं रशनमलुलितन्नह्यति[1] मतिपोषणे॥ ४
कुरुते०।

कृष्ण मेघों की विडम्बना करने वाली गंगा नायिका के कटितट की शोभा बढ़ाने वाले नील वस्त्र पर महादेव जी विद्युत् के सदृश चमकती सोने की रशना को दृढ़ता से बाँध रहे हैं (जिससे देखने वाले भौंचक्के हो जाते हैं) ।४

अङ्गुलिसुदले करमृदुकमले कण्टकिभुजदण्डके।
सुममधुसदृशं भूषणमकृशं वलयति जननन्दके॥ ५
कुरुते०।

महादेव गंगा के रोमांचित भुजदण्डों पर या कर-कमलों पर जिस कमल के अंगुलि रूपी पत्ते हैं और जो देखने वालों को खुश करने वाला है उस पर फूलों के मकरन्द के रंग वाले भूषण को स्पष्ट दृष्टि रूप में बाँध रहे हैं।५

चरणसरसिजे जनितमनसिजेऽरुणतररुचिरञ्जिते।
हंसकयुगलम्मुञ्चति विमलं सुशयनतलसञ्जिते॥ ६
कुरुत०।

वे ही शिव कामवासना उत्पन्न करने वाले, स्वाभाविक लालिमा वाले चरण-कमलों में, जो कि शय्या पर (लेटे हुए) आरूढ़ हैं, उनमें सुंदर नूपुर बिछुवे पहना रहे हैं (संजित शब्द 'संज संगे' भौवादिक धातु से अच् और इतच् प्रत्यय करने पर बना है)। ६

---

१. णह् (बन्धने) धातोः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुखयति सरितम्मृदुरतिचरितं हठिशठशितिकण्ठके[1]।
प्रतितरुचरणम्मम किमशरणं वन इह यदकुण्ठके[2]॥ ७
कुरुते०।

इस प्रकार शिव जी का गंगा के साथ किया गया रति-विलास उसे सुख दे रहा है। यह विलास हठी एवं शठ महादेव के प्रति या उनके द्वारा किया गया है। इधर मैं इस वन में जहाँ कि काँटे नुकीले हैं वहाँ अपने शरण रहित चरणों को उनकी याद में प्रत्येक वृक्ष के नीचे घुमाती फिर रही हूँ।७

हरपरिचरणे धृतनिजकरणे कविपरिवृढरामके।
प्रवदति सकलं विगलतु शमलं क्षितिजगदभिरामके॥ ८
कुरुते०।

महादेव की सेवा में अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों को समर्पित कर कविराज रामकवि के द्वारा इस प्रकार स्तुति करते हुए संसार में सर्वोत्तम यह स्तुति सम्पूर्ण पापों को दूर करे। (क्षितिजगत् शब्द पृथ्वीतल के अर्थ में प्रयुक्त है)। ८

अनुकलमनुरागन्तस्य दूति! ब्रवीष्य-
प्रकटकपटमस्य त्वन्न जानासि नूनम्।
बहिरिह करिणो यान् दर्शयन्ति स्वदन्तान्,[3]
भवति खलु ततोऽन्या चर्वणार्थं रदाली॥ ११

हे जया! तुम हर समय शिव जी के अनुराग को मेरे प्रति कहा करती हो किन्तु तुम शिव के अस्पष्ट इस कपट व्यवहार को बिलकुल नहीं जानती हो। देखो हाथियों के दाँत दिखाने को और तथा खाने के और होते हैं।११

---

१. शतकण्टके क०। २. पदकुन्तले क०। ३. वहिरिह करिणां ये दर्शनार्थाय दन्ताः ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

पापं वः प्रदहन्तु शङ्करशरा व्योम्न्युच्छलन्तः पुर-
प्लुष्टौ स्पष्टपराक्रमाः सवृतिके ब्रह्माण्डभाण्डोदरे।
यैर्विद्धे विवराऽध्वनान्तरगतं ज्योतिस्तृतीया वृते,
अद्याऽपि प्रतिदृश्यते निशि निशि भ्राजिष्णुताराभिषात् ॥ १२

इति श्रीगीतगिरीशे[1] प्रतियुवतिरतिवर्णनो
नाम सप्तमः सर्गः ॥७॥

महादेव के त्रिपुर दहन के समय अपना पराक्रम प्रकट करने वाले और आकाश में तथा इस सीमित ब्रह्माण्ड में उछलने वाले बाण पाठकों के पापों को दूर करें। आकाश व ब्रह्माण्ड के अन्दर जिन बाणों के द्वारा छेदों के करने पर जब कृष्णपक्ष की तृतीया या द्वितीया से रात्रि घिरी रहती है तब रात्रि में जो तारे चमकते हैं वे छिद्रित आकाश से निकलती हुई बाणों की अग्नि ही आज भी नजर आती हैं। (यहाँ तृतीया शब्द द्वितीया आदि कृष्ण पक्ष की तिथियों का भी उपलक्षण है) ।१२

इति सप्तमः सर्गः

---

१. महाकाव्ये, इत्यधिक पदम् ख०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

अष्टमः सर्गः

स्खलन्तं क्षीबवत् प्रातर्निद्रामुद्रितलोचनम्।
नुदन्तन्नतिभिर्मन्तुम्मृडं कुप्यमुमाऽब्रवीत्॥ १

प्रात:काल जिनकी आँखें निद्रा से बन्द हुई जा रही हैं, जो शराबी की भाँति, चलने में डगमगा रहे हैं तथा जो शिव पार्वती को प्रणाम कर अपना अपराध क्षमा करा रहे हैं ऐसे कोप के पात्र शिव जी से पार्वती कहने लगी। (कुप् धातु से यक् प्रत्यय करने पर बना है, निपातन से गुणाभाव हुआ है।') १

भैरवरागेण गीयते

भैरवराग में गेय

जागर गरिमजनितनिद्रावलविगलदवाचकवर्णा।
प्रलपति रसना किमपि तवोत्तररचनवचस्यधमर्णा॥ १
मैहि शङ्कर! मैहि पुरहर! सा तव जीवितमेका।
मा विरचय वचनं कुहकाधिप! हा! तव निकृतिरनेका। ध्रुवपदम्

हे महादेव! आप रात भर जागने की महिमा से आने वाली निद्रा के वल से अपने मुख से स्पष्ट अर्थ न वतलाने वाले वर्णों को न वोलने वाली अपनी जिह्वा से उत्तर देने में असमर्थ वाणी से कुछ का कुछ कह रहे हो। १

हे पुरहर शंकर! तुम भले ही वताओ क्योंकि वह गंगा नाम की नायिका ही तुम्हारे लिए प्राणरूप है। हे वंचकेश्वर शिव! तुम वनावटी वातें न वनाओ क्योंकि तुमने मेरे साथ अनेक प्रकार के अपमान जनक व्यवहार किये हैं। (यह पार्वती की उक्ति है जो उपालम्भयुक्त है तथा पहले श्लोक में जो अधमर्ण शब्द आया है वह असमर्थ अर्थ में प्रयुक्त है)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मलिनिमपूरविपूरितमन्तस्तव कितवाऽस्ति नृशंसम्।
तत्प्रकटयति बहिर्गलनैल्यनिभेन शितिन्निजमंशम्॥ २
मैहि शङ्कर०।

हे धूर्तराज शिव ! तुम्हारा हृदय कालिमा से परिपूर्ण एवं कठोर है। उसी कालिमा का एक अंश बाहरु गलस्थल से प्रकट होता हुआ गले की नीलिमा के रूप में स्पष्ट दिखायी दे रहा है।२

अलकाकुलमतिलकमनलं कृतिमिलितकुसुमलवभालम्।
मम न तवाननमातनुते मुदमरुणनयन ! रुचिजालम्॥ ३
मैहि शङ्कर०।

हे (रात्रि जागरण के कारण) लाल नेत्रों वाले शिव ! तुम्हारा जटाजूट से आच्छन्न, तिलक से रहित, अलंकार से शून्य तथा (संमर्दित) फूलों की पंखड़ियों से युक्त मस्तक वाला मुख मुझे लेशतः भी अच्छा नहीं लगता।३

कङ्कणकटकहारहरिचन्दनकुचकुङ्कुमकृतचिह्नम् ।
वपुरपि धृतमदभेदमिदन्तव भव ! कथमद्य विभिन्नम्॥ ४
मैहि शङ्कर०।

हे शिव ! तुम्हारे शरीर पर (गंगा के कर) कंकणों के चिह्न हैं, (पाद) कटक के चिह्न हैं (वक्षःस्थल पर) हार और हरिचन्दन के चिह्न हैं एवं कुचकुंकुम के चिह्न हैं। अतः मुझसे अभेद रखने वाला भी यह तुम्हारा शरीर क्यों विशेष तथा भिन्न हो रहा है।४

शशधरशकलसदृशनखपदततिरुरसि लसति तव जाता।
त्वदलिकशशिपरिपूरणिका किमुमां व्यथयितुमुपयाता॥ ५
मैहि शङ्कर०।

हे शंकर ! तुम्हारे वक्षःस्थल पर द्वितीया के चन्द्र के खण्ड जैसी नखघात-पंक्ति विराजित है। ऐसा मैं समझती हूँ कि तुम्हारे भाल स्थित चन्द्रकला की पूर्ति के लिए अर्थात् उसको पूर्ण चन्द्र का आकार देने के लिए यह नख के रूप में शशि-कलाएँ मुझे दुःख देने के लिए आयी हों। (यहाँ किमुमां, यह शब्द श्लिष्ट है, इसमें किम्, मां यह पदच्छेद है साथ ही किम्, उमा इस प्रकार पार्वती ने अपना नाम इसमें रख दिया है अर्थात् कवि ने यहाँ अपने काव्य प्रकर्ष को दिखलाया है)।५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रमणीचरणालक्तकरक्तमिदन्तव हृदयकपाटम् ।
गल्लगकज्जलबिन्दुरपि च मम तनुते चित्तविपाटम् ॥ ६
मैहि शङ्कर० ।

गंगा नाम की मेरी सपत्नी के चरण के महावर से तुम्हारा विशाल वक्षःस्थल लाल पड़ गया है और तुम्हारे गालों के ऊपर मेरी (सौत की) आँखों के काजल का चिह्न भी लगा हुआ है। हे शंकर ! ये सब लक्षण मेरे दिल को विदीर्ण कर रहे हैं।६

इन्दुनदीजलमृदुलनिजाङ्कसदृशन्न तव चरित्रम् ।
विषविषधरसम्पर्कसमर्पितमिदमतिपरमपवित्रम् ॥ ७
मैहि शङ्कर० ।

हे शंकर ! तुमने जो मस्तक पर चन्द्र और गंगा की धारा धारण की हुई है और उनके ही समान तुम्हारा शरीर भी श्वेत और मृदुल है किन्तु तुम्हारा चरित्र ऐसा नहीं यह तो तुम्हारे भूषणीभूत गलस्थल स्थित हलाहल और सर्पों के सम्पर्क से अपवित्रता को धारण करने से अत्यन्त कुत्सित है।७

श्रीकविरामविगुम्फितखण्डितगिरिजावचनमखण्डम् ।
खण्डयतीदमकाण्डकृतान्तनितान्तपतत्पृथुदण्डम् ॥ ८
मैहि शङ्कर० ।

महाकवि राम के द्वारा निर्मित यह खण्डिता नायिका गिरजा के अखण्डित (सम्पूर्ण) वचनों का समुदाय इतना कठोर है कि असमय में गिरने वाले यमराज के स्थूल दण्ड के मद को भी खण्डित कर रहा है ! अर्थात् शिव जी पर इन अखण्डनीय वचनों का प्रभाव यमराज के दण्ड से भी अधिक है।८

गल्लं गल्लगकज्जलञ्च हृदयं हृत्स्थं प्रियाकुङ्कुमम्,
नेत्रे नेत्रगतारुणत्वमपि ते सद्यः समुद्वीक्ष्य मे ।
दृक् फुल्लत्यपि सङ्कुचत्यपि मनोरज्यत्यपि द्वेष्ट्यपि,
श्रश्यत्यश्रु सुशीतमुष्णमपि तन्मूढाऽस्मि कुर्वे नु किम् ॥ २

पार्वती कहती हैं कि तुम्हारे गाल पर लगे काजल को देखकर और उससे दूषित गाल को देखकर, तुम्हारे हृदय और हृदय पर लगे तुम्हारी मुझसे भिन्न प्रिया के कुंकुम को देखकर और तुम्हारे नेत्रों और नेत्रों में रात्रिजागरणकृत कालिमा को देखकर मेरा हृदय और मेरी आँखें कभी खिलती हैं और कभी बन्द होती हैं। मेरा मन तुम्हारे प्रति कभी अनुरक्त होता है और कभी द्वेष करता है। कभी आँखों से ठण्डे आँसू गिरते हैं तो कभी गरम। अतः तुम्हारी इन चेष्टाओं से मैं सुखी होऊँ या दुःखी होऊँ इस निर्णय के लेने में किंकर्तव्यविमूढ हो रही हूँ।२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वन्ध्ये वेधसि सत्रपेऽत्र सुरपे किङ्कार्यमित्युच्यते,
चित्ते चिन्तयति भ्रमत्यपि यमे चन्द्रे च तन्द्राकुले।
वैमुख्यं शिखिनि व्रजत्यथ रवौ वैवर्ण्यमप्यागते,
शम्भुः सस्मितमेव पीतगरलः पायादपायात्स वः॥ ३

इति श्रीगीतगिरीशे[1] शम्भूपालम्भो

इति अष्टमः सर्गः

जब समुद्र मंथन से हलाहल निकला तब उसे देखकर ब्रह्मा जी की बुद्धि विचारशून्य हो गयी, इन्द्र लज्जित हो गये, विष्णु 'इस विष का क्या किया जाय' यह सोचने लगे, यमराज विचार में टहलने लगे, चन्द्रमा को तो देखते ही मूर्च्छा आ गयी, अग्नि देवता ने विष पिण्ड की ओर से मुंह मोड़ लिया, सूर्य भगवान् की सारी तेजी धीमी पड़ गयी, तब जिन भगवान् शिव ने मुस्कराते हुए उस विष को उठाकर पी लिया, वे शिव तुम्हें सब हानियों या कष्टों से बचायें।३

---

१. महाकाव्ये इत्यधिकं पदम् ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

नवमः सर्गः

कामे कोपे च सदृशमनुरोधन्निबन्धतीम्।
दोलालोल[1] तरस्वान्ताञ्जयोचे पर्वतात्मजाम्॥ १

पार्वती की अंतरंग सखी जया जिसका चित्त काम के विषय में अर्थात् शिव से अनुराग करने के बारे में तथा उनकी विपरीत गतिविधि से उत्पन्न क्रोध के विषय में अर्थात् शिव जी से प्रेम करूँ या कुपित होकर बैठ जाऊँ इस विषय में तराजू के दो समान स्थिति वाले पलड़ों के समान है और डोलों की तरह कभी इधर और कभी उधर जा रहा है ऐसी पार्वती से कहने लगी।१

धन्यासीरागेण गीयते

कृपयति पुररिपुरतिविधुवदने।
ज्वलसि मुधालि! विरहबहुदहने॥ १
शङ्करे मा भज भामिनि! मानमुमे! । ध्रुवपदम्

धन्यासी राग में गेय

हे चन्द्रातिशायी सौन्दर्ययुक्त मुखवाली! तुम पर शिव जी कृपा करने के लिए (सर्वदा सर्वथा) उद्यत हैं। हे सखि! तुम व्यर्थ ही विरह दावानल में जलती रहती हो।१

हे मानशीले! उमे! तुम शंकर के प्रति अपनी मान करने की आदत छोड़ दो।

अगणितमणिगणगुम्फितहारम्।
कलय विकलवति वरदे! भारम्[2]॥ २
शङ्करे०।

हे वरदे! हे बेचैन बुद्धि वाली पार्वती! तुम अनगिनत मणि से गूँथे हुए उस हार को (मानपरायण होने के कारण) भार ही समझो।२

---

१. दोल क०। २. तारम् ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

किं विलपसि विलपिष्यति बहलम्।
मद्वचनं यत्कुरुषे विफलम्॥ ३
शङ्करे०।

हे पार्वति ! तुम क्या विलाप कर रही हो, (अभी) और विलाप करोगी। क्योंकि तुम मेरी प्रार्थना ठुकरा रही हो।३

शशिमुखि ! कुसुमरचितशुचिशयने।
परिचर हरमिह पङ्कजनयने॥ ४
शङ्करे०।

हे शशिमुखि ! हे पंकजनयने ! तुम फूलों की शय्या पर महादेव की सेवा या परिचर्या करो।४

हरमुखमृदुदीधिति[1] रुचिजालम् ।
पायय नयनचकोरकबालम् ॥ ५
शङ्करे०।

महादेव के मुख रूपी चन्द्रमा की किरणों का अपने नेत्र रूपी चकोर को पान करा ले।५

तिष्ठति मनसि न गीरविकारा।
तव विपरीतकलश इव धारा॥ ६
शङ्करे०।

तेरे हृदय में मेरी निर्मल वाणी (सलाह) स्थान उसी तरह नहीं पा रही है जैसे उलटे हुए घड़े में पानी की धारा (बूंद) नहीं रुकती।६

ज. दीधेति ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

क्व निधिरुपैति जनं सखि! विधनम्।
स क्व वदति न न नेति च वचनम्॥७
शङ्करे०।

हे सखि! निर्धन को खजाना कहाँ, कैसे मिल सकता है, वह निधि को पाकर 'यह मुझे नहीं चाहिए' ऐसे वचन कब कह सकता है। (यहाँ निधि रूप शिव हैं, तथा धनहीन गौरी हैं)।७

श्रीकविरामगदितवरवचसा।
तुष्यतु गौरीपतिरतितरसा॥८
शङ्करे०।

इस प्रकार राम कवि के इस उत्तम काव्य को सुनकर गौरीपति (शंकर) शीघ्र संतुष्ट हों अर्थात् प्रसन्नता से आशीर्वाद प्रदान करें।८

यत्कर्णं पिदधास्यमुष्य गिरिजे नाम्नि श्रुते तद्दिशाऽऽ-
कृष्टा दुष्टकिशोरिकेव चरणौ पश्चात् क्षिपस्यद्य यत्।
उक्तैहीति न नेति जल्पसि गिरं यत् त्वन्ममानाश्रवे,[1]
तन्माना[2] नहि चण्डि! चण्डयसि परं स्पष्टं पुनः कर्मणा॥२

हे पार्वति! जो कि तुम महादेव का नाम सुनते ही अपने कान बन्द कर लेती हो और जिस ओर से वह नाम की ध्वनि आती है उस ओर अपने पैरों से चलना शुरू कर देती हो तथा मेरे या महादेव के द्वारा 'इधर आओ' कहने पर ना ना करती रहती हो, हे चण्डि! यह मान करने का लक्षण नहीं, केवल कार्यों से तुम अवश्य बड़ी कोपना (तुनकमिजाज वाली) मालूम पड़ती हो।२

१. वचने न स्थिते ;—इत्यर्थः। २. अर्थदृष्ट्या तन्नाम्ना इति समीचीनः पाठः।

Dr. Urmila Sharma Collection. Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्कीर्य स्वदृशन्नखेन सहसा सम्पुरयत्यच्युते,
साहस्रं सकृदूनमम्बुजवलिं शम्भोः सपर्याऽर्थकम्।
आश्चर्यं यदभूदुमामनसि तद्भूयोऽपि संवर्द्धयन्,
सद्यः श्रीशदृगर्पणात् दिशतु वः श्रीशङ्करः सम्पदम्॥ ३

इति श्रीगीतगिरेशे पार्वतीप्रवर्तनो
नाम नवमः सर्गः ॥९॥

जब भगवान् शंकर की पूजा के लिए लाये हुए एक हजार कमलों में से एक कमल (भगवान् शंकर ने अपनी माया से विष्णु की भक्ति की परीक्षा के लिए गायब कर दिया तब उस कमल की पूर्ति के लिए) विष्णु ने अपने नख से नेत्र-कमल को निकाला और एक हजार की संख्या पूर्ण करके शंकर के चरणों में अर्पित कर दिया। यह देखकर पार्वती के मन में आश्चर्य हुआ। आज उसी आश्चर्य की आवृत्ति करते हुए और विष्णु के नेत्र-कमल जैसे अपने नेत्र को पार्वती के चरणों की ओर ले जाते हुए जो पार्वती के आश्चर्य में वृद्धि की उससे पार्वती चकित हुई और इस प्रकार अद्भुत कार्यकारी भगवान् शंकर पाठकों की प्रत्येक प्रकार की सम्पदा बढ़ायें। (यह कवि की कामना है)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

दशमः सर्गः

मदनानन्दसन्दोहनिमज्जन्मानसः शिवः।
शिवावक्षोजकलशं श्रयिष्यन्नाह तां प्रियाम्॥ १

कामदेव के आनन्द-सागर में डूबते हुए शिव ने पार्वतीके कुच-कलशों का सहारा पाने की इच्छा से पार्वती से कहा।१

रामगिरिरागेण गीयते

मम मनोऽसि प्रिये ! चक्षुरसि तनुरसि प्राणपञ्चकमसि च सत्यम्।
वदनमुन्नाम्य पीयूषरसवर्षिणा लोचनेन स्नपय भृत्यम्[1]॥ १
शिवे ! रुचिरचरिते ! रचय मयि वचनमविकारम्।
मौनमपमुह्य रदचन्द्रिकाभिर्समातन्वतनुसागरमपारम्॥ ध्रुवपदम्

रामगिरि राग में गेय

हे पार्वति ! तुम मेरे मन के रूप में हो, आँख, शरीर व मेरे प्राणों के रूप में हो, यह सच कह रहा हूँ। मेरे मुंह को उठा कर अमृतवर्षी लोचन-युगल से मुझ दास को कृतार्थ करो।१

हे सुन्दर चरित्र वाली ! तुम मुझसे वातें तो करो,तथा चुपके से मेरा आलिंगन करके अपनी दन्तद्युति-रूप चन्द्रिका से मेरे काम-सागर को उद्वेलित करो।

कज्जलश्यामलितमश्रुविस्रुतमिदं वहति सुमुखीदृगमुपमानम्।
आगलन्निशि तमिस्रन्निपीयाऽऽशु किं चन्द्र उद्गिरति तदमानम्॥ २
शिवे ! रुचिर० !

हे शिवे ! काजल से काले टपकते हुए आँसुओं से गीला यह तुम्हारा मुख ऐसा लगता है, जैसे कण्ठ तक रात के अँधेरे को पीकर चन्द्रमा पेट में न समाते हुए उस अंधकार को उगल रहा हो, कै कर रहा हो।३

---

१. नृत्यम् ख०। २. रुचिरचरिते ख०। ३. रच ख०। ३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

विश्वसिषि मद्वचसि चेन्न दिव्येन तद् भावये मम मनसः शुद्धिम्।
अधरकोशं[1] धयाम्यतनुतप्तस्तनन्धारयामि स्थिरय बुद्धिम्॥ ३
शिवे! रुचिर०!

हे शिवे! यदि तुम मेरा विश्वास नहीं करती तो मैं अपने मन की शुद्धि की परीक्षा के लिए दिव्य (अग्न्यादि परीक्षा) देने को तैयार हूँ। मैं तुम्हारे अधरामृत के खजाने को पान करता हूँ तथा दिव्य पक्ष में पाताललोक में या गड्ढा खोद कर उसमें बैठ जाता हूँ। तथा मुझ पर खूब (अतनु) आग जलाओ। फिर भी यदि मेरा शरीर बच जाय, न जले तो मेरी बातों पर अपनी बुद्धि स्थिर कर लेना। ("अतनुतप्तः' का दूसरा अर्थ है काम से पीड़ित मैं अधरामृत पान करूँ)। ३

कोपलोपक्षमन्तन्वि! तव नापरन्नतिमृते मम मनसि जाने।
मदलकालिकुलमपि तव चरणसरसिजे शीलतु सौभगनिधाने!॥ ४
शिवे! रुचिर०!

हे सुन्दरि! तुम्हारे कोप को हटाने के लिए एकमात्र प्रणाम को ही कारण मानता हूँ। अतः मैं अपने अलक पुंज (जटाजूट)को तुम्हारे सौन्दर्य-सागर भूत चरण-कमलों पर विलोठित करने को तैयार हूँ।४

स्तनशिखरिविकटतटसङ्कटे निःक्षिपावैषि यदि मामिह समन्तुम्।
चिकुरकर्षणयुतं कुरु लताऽऽवेष्टितकमुरसि रुद्धन्न दिशं गन्तुम्॥ ५
शिवे! रुचिर०!

हे शिवे! यदि तुम मुझे सापराध मानती हो तो अपने स्तन-पर्वतों के दुर्गम चोटियों पर पटक मारो तथा मेरे वाल खींच कर मुझे लता वेष्टितक से बाँध दो। अपनी छाती से बाँध दो तथा मुझे कहीं न जाने को यह दण्ड दो (लतावेष्टितक नामक एक कामासन होता है)।५

---

१. कोकम् क०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मत्तमदनद्विपप्रकटपटहारवं घटय मणिनूपुरध्वानम्।
कुसुमशरघातसंघातजित्वरतरन्देयमपि नखरपददानम्॥ ६
शिवे! रुचिर०!

तथा मुझ अपराधी को यह भी दण्ड दो कि मेरे ऊपर ऐसे जोर से पाद-प्रहार करो कि नूपुर ध्वनि इतने जोर से उठे कि जैसे मानो मत्तकामद्वीप की ढोल जैसी चिग्घाड़ हो। तथा मेरे शरीर को अपने तीक्ष्ण नखों से ऐसा नोच डालो कि देखने वाले कहें कि यह नख की चोट तो काम के बाणों की चोट से बढ़कर है।६

भृकुटीभुजगीयुगप्रचितमधराऽमृतेनाऽपहर नलिनमुखि! मोहम्।
कमलकोमलपदद्वितयपरिचारणाऽनुचर एवाऽस्मि तव सोऽहम्॥ ७
शिवे! रुचिर०।

हे कमलमुखि! शिवे! तुम अपनी भृकुटीरूपी सर्पिणीद्वय के डसने से उत्पन्न मेरी मूर्च्छा को अपना अधरामृत पिला कर दूर कर दो क्योंकि मैं तुम्हारे कमलकोमल चरणद्वय की सेवा करने वाला सेवक ही तो हूँ ७।

कविनृपतिरामजिद्वदनचन्द्रच्युता भुवि बुधसुखकरसुधेदम्।
हरतु हरसेवकश्रुतियुगलचुलुकिता भवदहनबलमपरिमेयम्॥ ८
शिवे! रुचिर०!

महाकवि रामजित् के मुखचन्द्र से गिरी यह वचनसुधा पृथ्वी पर विद्वान् ब्राह्मणों को सुख देने वाली है। महादेव के सेवकों द्वारा कर्णचषक से पान की जाने पर उनके संसारदावाग्नि के अमित संताप को दूर करने वाली है।८

त्वन्मौनं खलवाचमृच्छतु मनस्तापो विपक्षस्त्रियम्,
लज्जा ते ह्रियमेव गच्छतु भयं ते भीतिमेवैतु च।
पीडा यातु च ते प्रसूनशयनं प्रत्येव सम्प्रत्ययम्,
दासोऽल्पासमुपागतः सुमुखि! ते स्निग्धो विदग्धः प्रिये॥ २

हे सुमुखि! तुम्हारी चुप्पी खलवाणी में प्रविष्ट हो जाय, तुम्हारा मनस्ताप शत्रुस्त्रियों को प्राप्त हो जाय! तुम्हारी लज्जा लज्जा को ही प्राप्त हो अर्थात् तू निर्लज्ज हो जा, तेरा भय ही भीति को प्राप्त हो अर्थात् तू निर्भय बन जा। तेरी पीड़ा पुष्प-शय्या को प्राप्त हो अर्थात् तेरे साथ लेटकर पुष्प-शय्या को मर्दित करूँ, यह तुम्हारा सेवक सम्प्रति तुम्हारे पास खड़ा है जो कि तेरा प्रेमी तथा काम-कला-कुशल है।२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

पद्मैर्यत्र इवान्तरे मधुकरा निष्पिष्य निश्च्योतिताः,
तेषामेष[1] रसस्तमिस्रमधुना मन्ये जगन्त्यश्नुते।
तत्सम्प्रत्यपि किं श्रुतिद्वयमिदम् मुग्धे! पिधत्से मुधा,
मुक्त्वैवाऽङ्गुलिबन्धमाधिभिदुरा मद्गीः सुधा पीयताम् ॥ ३

पद्मों ने भौरों को अपने कोशों में वन्द कर उन्हें निचोड़ डाला, अर्थात् शाम हो गयी। उनका ही काला-काला रस अँधेरे के रूप में संसार में फैल गया। अतः तुम अब रात्रि के आरम्भ में कानों को क्यों दोनों अँगुलियों से वन्द कर रही हो? अब तो तुम अंगुलि हटा कर कानों से मेरे चाटु वाक्यों की सुधा का पान करो।३

श्यामा त्वं वयसा ब्रवीषि मनसा श्यामञ्च मां सुन्दरि!
श्यामा रात्रिरियन्निकुञ्जभवने श्यामन्तमः सर्वतः।
श्यामन्तीरमिदन्तृणैर्द्युसरितः श्यामास्तमालैर्दिशः,
श्यामः कोऽपि रसः करोति मयि तत् शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ४

हे सुन्दरि! तुम श्यामा (षोडश वर्षीया) हो। मुझे तुम मन का काला कहती हो। देखो, रात्रि काली-काली हो रही है तथा निकुंजों में काला अँधेरा सब ओर छाया हुआ है। यह मन्दाकिनी का तीर तृणों से श्याम हो रहा है—अर्थात् शाद्वल हो रहा है, दिशाएँ भी तमाल वृक्षों से श्याम हो रही हैं, इस समय श्याम रस अर्थात् श्रृंगार रस मेरे मन पर शार्दूल की तरह पूर्णाधिकार किये हुए है।४

वदननयनकरचरणं पद्मान्यधरस्तवैव[2] बन्धूकम्।
गात्रं चम्पककुसुमान्येतैरस्त्रैर्जगज्जयत्यतनुः ॥ ५

कामदेव संसार को तुम्हारे मुख, नेत्र, चरण और हाथ रूपी पद्मास्त्रों के प्रहार से तथा तुम्हारे अधर रूपी वन्धूक पुष्पास्त्र से तथा तुम्हारे गात्र रूपी चम्पकास्त्र से जीत रहा है।५

---

१. एक ख०। २. एष ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

अतिस्तोकाऽऽलोका कलितचरिते ! तेऽलकलता,
मुखेऽलं खेलन्ती चिबुकतलमुल्लङ्घ्य लसति।
तमस्तोमन्तस्यां गलबिलमभिव्याप्य पिबता,
किमुद्गीर्णा ग्लावा तिमिररसधारा नु वलिता॥ ६

हे सुचरिते ! तेरे बाल बड़े काले हैं ! जो कि मुंह पर फैले हुए हैं तथा ठोड़ी के नीचे तक लटक रहे हैं। मानों उस काली अलकलता के काले रस को गले तक पीकर चन्द्रमा ने काली रस धारा को बालों के रूप में उगल दिया हो।६

चकोराः श्रीचोरास्तवनयनयोर्विश्वविदिता,
दिवा दिव्यं शुद्ध्यै विदधति मृषाऽङ्गारकवलैः।
अदाहे हेतुत्वं भजति पुनरेषान्निशि निशि,
त्वदीयाऽऽस्यस्पर्द्धाधरविधुवितीर्णाऽमृतभुजिः ॥ ७

चकोरों ने तुम्हारे नेत्रों की शोभा को चुरा लिया है, यह संसार जानता है। वे चोर चकोर अपनी शुद्धि के लिए या हम चोर नहीं हैं यह सिद्ध करने के लिए झूठ-मूठ ही अंगारे खाकर दिन में अग्निदिव्य करते (अग्नि परीक्षा देते) हैं। वस्तुतः उनके अंगार भक्षण कर लेने पर भी न जलने का कारण तो तुम्हारे मुख की स्पर्धा करने वाले चन्द्रमा द्वारा दिया गया जो अमृतमय भोजन है वही है। (यहाँ स्पर्धा-धर यह विच्छेद है तो स्पर्धा करने में पराजित अर्थ होगा। स्पर्धा-धर का अर्थ है स्पर्धा करने वाला। चकोर चन्द्रिका का पान करता है यह कवि-प्रसिद्धि है।)७

शिवो[1] वक्षोजस्ते चिकुरनिकरः कृष्ण[2] उत ते,
विधुर्वाणी जिष्णुर्गतिरपि च ते हंसकरिणाम्।
बृहद्भानुर्मूर्तिर्निधिरपि कलानान्तव मुखम्,
स्तवो यस्माच्छ्रीदः वत तदसि सर्वाऽमरमयी॥ ८

तेरे स्तन शिव स्वरूप हैं (लिंगाकृति से तथा छूने से कल्याणकारी हैं)। केशपाश कृष्ण है। वाणी चन्द्र रूप है, सुखद है। तेरी चाल हंस और हाथियों को जीतने वाली है। (विष्णु अर्जुन रूप है) तेरा मुख कलानिधि चन्द्रमा रूप है, तेरी स्तुति लक्ष्मी प्रदान करती है (श्रीदः विष्णु या कुबेर रूप है)। इस प्रकार तुम्हारा रूप सर्वदेवमय है।८

---

१. ख० पुस्तके तु शिवे इत्यस्ति। २. कृत्स्न क०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

चक्षुस्तुष्यति हृष्यति प्रियसखि! स्वान्तं श्रुतिः सज्जते,
स्पन्दत्येष पयोधरस्त्वगपि ते रोमाञ्चमभ्यञ्चति।
इत्थन्दृग्विषयं गते मयि वहन्त्यङ्गानि सर्वाणि ते,
सम्यक् प्रीतिविजृम्भितं कथमियम् मूका न गीर्लज्जते॥ ९

हे प्रिय सखि, जया से प्रेम करने वाली पार्वति! मेरे सामने जाने पर तेरी आँखें सन्तुष्ट हो जाती हैं। मन प्रसन्न हो उठता है। कान खड़े हो जाते हैं। पयोधर फड़कने लगते हैं। त्वचा रोमांचित हो जाती है। इस प्रकार तेरे सारे ही अंग प्रीति से विकसित हो उठते हैं, एकमात्र तुम्हारी (जुबान) वाणी ही मौन रहती है। भला इसे इन सबके सामने लज्जा नहीं आती।९

धम्मिलच्युतमल्लिकं श्रमजलव्यालुप्तकस्तूरिका-
पत्रं सत्रपलोचनाऽञ्चलमतिश्वासावलिव्याकुलम्।
वक्त्रं वीक्ष्य रतान्ततान्तमुदयन्मोदो भवान्या भवः,
प्राक्[1] संरब्धतरः स्मरः स्मृतिमताञ्चित्ते चिरन्तिष्ठतु॥ १०

इति श्रीगीतगिरीशे[2] सरसगिरीशो
नाम दशमः सर्गः॥१०॥

भगवान् शिव जिनका रतिक्रीड़ा से पूर्व कामोद्वेग वहुत बढ़ा हुआ था तथा रतिक्रीड़ा की समाप्ति पर जिन्होंने पार्वती के केशों से गलित मल्लिका पुष्पयुक्त तथा रति श्रम से कस्तूरिका पत्ररहित, नेत्रों में लज्जा वाले, अत्यधिक श्वासोच्छ्वास वाले व्याकुल मुख को देखकर आनन्द पाया है वे शिव भक्तों के हृदय में स्थिर रूप से बस जायें।१०

●

१. स्रक् क०। २. महाकाव्ये इत्यधिकं पदम् ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एकादशः सर्गः

अनुनीय पुरारातौ गतऽनुशयतापिताम्।
बालां मालामिव म्लानान्तां सखी गिरमैरयत्॥ १

पार्वती को मनाते-मनाते जब शिव हार कर लौट गये और पार्वती मानवती ही वनी रहीं तव उनके चले जाने पर पश्चात्ताप करने वाली षोडशी पार्वती से जो कि माला की तरह म्लानचित्त थीं उससे जया सखी कहने लगी १।

मारुणीरागेण गीयते

चरणशरणमुपगतमन्धकरिपुमपखेदं कुरु दुर्गे!।
अकपटचाटुवचनरचनाभृति मा कुटिला भव भर्गे॥ १
दुर्गे! पुरहरणमभिमतमभिसर केलये॥ ध्रुवपदम्

मारुणीराग में गेय

हे दुर्गे! तुम चरणों पर पड़े शिव को दुःखरहित कर दो तथा उनके निष्कपट खुशामद के वचनों पर टेढ़ी-टेढ़ी मत वनो।१

हे दुर्गे! तुम प्रिय महादेव के पास केलि के लिए चल पड़ो।

अतिभूमिं गतमपि नतिरन्तं नयति कृशोदरि! मानम्।
न नतिशतैरपि तव सोऽपैति मनस्तव जैह्म्य निधानम्॥ २
दुर्गे! ०।

हे कृशोदरि! मान करने की भी हद होती है, वह मान कितना ही बड़ा क्यों न हो, उसे भी पति द्वारा किया प्रणाम शान्त कर देता है, किन्तु तेरा मान तो सौ वार प्रणाम करने पर भी नहीं हटता। सचमुच तेरा मन कुटिलता की खान है।२

तव मञ्जीररणितमनुलक्ष्य विपक्षवधूरतिदीना।
मन्दादरमिह मन्दरगिरिमन्दारवनेऽस्तु निलीना॥ ३
दुर्गे! ०।

तुम्हारे मंजीर की ध्वनि सुन कर तुम्हारी सौत दीन वन कर अपनी सम्मानभावना से रहित होकर मन्दराचल के मन्दार वृक्षों के वन में जा छिपे।३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नुदति सुदति ! पवनोऽपि मनोहरहरसेवक इव पृष्ठे।
सरसिजमुखि ! दक्षिणचरणं[1] क्षणमिममधिमहय महिष्ठे ॥ ४
दुर्गे ! ०।

हे सुन्दर दन्तावलि वाली पार्वति ! देखो, यह मस्तानी हवा भी शिव के अनुचर की तरह तुम्हें प्रेरणा दे रही है—महादेव की ओर चलने की। हे कमल-मुखि ! तुम अपने दक्षिण चरण का प्रहार महान् शिव पर कर इसे महत्ता प्रदान करो।४

त्वामधिचन्दनवनमियमन्यभृताऽऽह्वयतीव सुलब्धम्।[2]
क्षणकरणीये कर्मणि तरुणि ! प्रकरिष्यसि नु किमब्दम् ॥ ५
दुर्गे ! ०।

हे तरुणि ! यह कोयल भी तुझे चन्दन वन की ओर चलने को बुला रही है, यह चल पड़ने का काम वड़ा ही सुलभ या सुकर कर्म है। तुम एक क्षण में तैयार होकर चल सकती हो। इसके लिए क्या तैयारी में एक वर्ष लगा दोगी।५

(सुलब्धम् पद में भाव में 'क' प्रत्यय है)।

पृष्ठेऽनवगतगतिमवलम्ब्य निमीलय शङ्करनेत्रे।
यौवननृपतिद्वारचरस्तनकृतरोमावलिवेत्रे ॥ ६
दुर्गे ! ०।

हे यौवन रूपी राजा के द्वारपाल भूत स्तनों को रोमावलि रूपी वेंत वाला द्वारपाल वनाने वाली शिवे ! तुम पीछे की ओर निभृत पैरों से जाकर अपने हाथ से शिव की आँखें वन्द कर दो।६

स्वस्त्ययनं मधुकरसामगमुनिरुचितं प्रभवति कर्त्तुम्।
जयनान्दीमधुना रशनारवमर्हसि लब्ध्वनुसर्तुम् ॥ ७
दुर्गे ! ०।

(जब तुम शिव जी की ओर चलोगी उस समय) तुम्हारी पदध्वनि से उड़ते हुए व गुंजार करते हुए भौंरे सामवेद गाने वाले मुनि की तरह स्वस्तिवाचन का पाठ करें। और तुम (चलते समय) रशना क्वाण रूपी नान्दी पाठ को करती हुई शिवाभिसार के लिए करधनी की ध्वनि का अनुसरण करती चलो।७

---

१. दक्षिणहरिणम् ख०। २. सुदष्टम् क०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लोकविरामभणितमतिसुन्दरगिरिजोद्यमनसुगीतम् ।
ऐक्षवमधुमाकन्दसिताऽमृतरसमधुरत्वमतीतम् ॥ ८
दुर्गे ! ० ।

भगवती पार्वती माता के चलने का उद्बोधक यह सुन्दर रामकवि निर्मित गान का माधुर्य गुड़, शहद, रसाल, मिश्री और अमृत से भी बढ़ कर है। ८

अङ्गं स्रक्ष्यति[1] वक्ष्यति प्रियवचो [2]द्रक्ष्यत्यतृप्यद्दृशा,
भद्रं प्रक्ष्यति शक्ष्यतीह[3] यदि सा मे हर्षमावक्ष्यति।
इत्यस्वल्पविकल्पनैः पुररिपुः सङ्कल्पनैर्जल्पनै-
र्यामं कल्पितकल्पविभ्रममिमन्नेष्यत्यकल्पः कथम् ॥ २

हे पार्वति ! तेरे विरह में महादेव एक प्रहर को भी एक कल्प की तरह विरह-प्रवर से पीड़ित अस्वस्थ कैसे बिता रहे होंगे ? वे इस याम में यह संकल्प-विकल्प करते होंगे कि पार्वती अपने शरीर को सजा रही होंगी, आकर प्रिय वचन बोलेंगी, मेरी ओर एक टक देखेंगी, यदि साहस करेंगी तो मुझ वियुक्त का हाल पूछेंगी फिर मुझे प्रसन्न करेंगी, इस प्रकार महादेव सोचते होंगे व आकाशभाषित करते होंगे और समय काटते होंगे। २

भालचन्द्रहतध्वान्ते कैलाशगिरिगह्वरे।
प्रदर्श्य श्रीहरं गौरीं सत्रपां विजयाऽब्रवीत् ॥ ३

तदनन्तर पार्वती जब न पहुँची तो विजया ने कहा—लो ! महादेव को स्वयं देखो सामने कैलास पर्वत की भालचन्द्र से अन्धकारशून्य गुहा में विराज रहे हैं, यह दिखलाने पर लज्जित पार्वती से विजया बोली। ३

---

१. सृज् (विसर्गे) धातो रूपमिदम्। २. द्रक्षति—इति मूलपाठः। ३. शक्लृ (शक्तौ) धातो रूपम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

असाउरीरागेण गीयते
कल्पलतिकाततिप्रचुररुचिरे[1] ।
विलस कैलाशभुवि भवनिकट
इह कुसुमचितचिकुरनिकरे ! ॥ ध्रुवपदम्

असाउरी राग में गेय

हे पुष्पांचित जूड़े वाली पार्वती ! तुम इस कल्पलताओं के समूह से सुशोभित कैलाश पर्वत के प्रदेश में महादेव के निकट विलास करो।

मिलितमल्लीमतल्लीसुशयने ।
कमलदलसदृशनयने ! ॥ १
विलस० ।

हे कमल-दल जैसे नेत्रों वाली ! तुम श्रेष्ठ मल्लिका लता के फूलों से बनी सेज पर विलास करो।१

मलयमारुतविहितसुरभिभावे ।
रतिरचितचतुरहावे ! ॥ २
विलस० ।

जहाँ मलय वायु की सुगन्ध व्याप्त है, ऐसे स्थान पर महादेव के निकट, हे रति से हाव-भावों को प्रकट करने वाली पार्वती ! विलास करो।२

मत्तमधुपप्रकरगीतिमुखरे ।
मृगमदकुचपरिसरे ! ॥ ३
विलस० ।

हे कस्तूरी-चर्चित कुच-युगले ! पार्वति ! मत्त भौंरों के समुदाय से गुंजित शिव जी के निकट विहार करो।३

गौरकरकिरणधवलितविभागे ।
हरचरणयुगसरागे ! ॥ ४
विलस० ।

हे महादेव के चरणों में अनुरक्त पार्वति ! चन्द्र-ज्योत्स्ना से धवलित स्थलों पर शिव के साथ विहार करो।४

---

१. गीतमिदं संगीतशास्त्रदृशा त्रुटितमिव भाति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri

मधुरपिकनिकररवरमितकर्णे ।
तनुविजितकनकवर्णे ॥ ५

विलस० ।

हे कनक को भी लज्जित करने वाले देह वाली! मधुर पिक ध्वनि से जहाँ कान आनन्दित हो रहे हैं—वहाँ रमण करो।५

गन्धसम्बन्धबन्धुरधरणिके ।
गलतरललिलतमणिके ॥ ६

विलस० ।

हे गले पर लटकती मणि वाली पार्वति! तुम गन्धातिशय से जहाँ की पृथ्वी सुन्दर हो रही है वहाँ रमण करो।६

हरचरणपरिचरणविगतपापे ।
शङ्कर! धृतिवशितकुसुमचापे ॥ ७
रामजिति कविवरे कृपय ।

विलस० ।

शङ्कर! तुम शिव-सेवा से निष्पाप वने तथा धैर्य से काम को वशीभूत करने वाले रामजित् नामक मुझ कवि पर कृपा करो।७

स्मृत्या तवान्तरमपूरि महेश्वरस्य,
भ्रान्त्या च ते बहिरिदं भृतमेव विश्वम्।
वक्षस्तदस्य परिपूरय वक्षसा ते,
मूढे! वसन्ततिलकायितकाननेऽस्मिन् ॥ ४

हे मूढ़े! शिवे! तेरी स्मृति ने महादेव के हृदय को परिपूर्ण कर रखा है, एवं तेरी भ्रान्ति ने यह सारा विश्व महादेव के लिए भर रखा है अर्थात् वे अन्दर और बाहर तुझे ही देखते हैं। अतः अब तुम उनके वक्षःस्थल को अपने वक्षःस्थल से पूर्ण कर दो अर्थात् पुरुषायित करो। क्योंकि यहाँ इस उपवन में कामोद्दीपक वसन्त—ऋतु महक रहा है।४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सा मन्दाक्षेण मन्दाक्षं मन्दाक्षतरं वचः।
ब्रुवन्ती भीतभीतेव विवेशाऽऽनन्दमन्दिरम् ॥ ५

यह विजया की उक्ति सुन कर शर्माती हुई पार्वती अति स्वल्पाक्षर वचनों को पुनरुक्ति में बोलती हुई डरी हुई-सी झरोखों वाले आनन्द-मंदिर में प्रविष्ट हो गयीं अर्थात् विजया की बात मान ली।५

टोडीरागेण गीयते

रागतरङ्गितगुरुगौरीसुखसागरवर्द्धनमिन्दुम् ।
स्वच्छललाटतलप्रतिफलितशिवाऽलिकमृगमदविन्दुम् ॥ १
हरमिष्टतरं निजमतिसरसि मरालम्।
ददर्श साऽधरचञ्चुविचुम्बितरदरुचिविशदमृणालम् ॥ ध्रुवपदम्

टोडी राग में गेय

जो महादेव राग रूपी वायु से हिलोरें लेते हुए पार्वती के सुख-सागर को बढ़ाने के लिए चन्द्र रूप हैं तथा जिनके स्वच्छ ललाट पर पार्वती के मस्तक में लगा कस्तूरी का विन्दु प्रतिबिम्बित है।१ (यह पुरुषायित का गूढ़ वर्णन है)

जो पार्वती की बुद्धि रूपी मानसरोवर के अत्यन्त अभीष्ट मराल रूप हैं उनको पार्वती ने शिव जी के अधर चंचु द्वारा अर्थात् ओष्ठों द्वारा अपने अधर के चुम्बन करने पर पार्वती के दाँतों की कान्ति रूपी मृणाल को खाने वाले मराल के रूप में देखा।

कुङ्कुमरसरञ्जितहिमबालुकधवलहृदाऽऽहितलोभम् ।
रविकरविच्छुरिताऽन्तरशारदमुदिरमिव स्फुटशोभम् ॥ २
हरमिष्टतरं०।

जिस महादेव का मन पार्वती के केशर के लेपन से युक्त कपूर के पराग के समान धवल हृदय स्थल के लिए लुब्ध है अर्थात् आलिंगनोत्सुक है वह हृदय ऐसा शोभित होता है जैसे शरद् ऋतु के सफेद बादल पर प्रातःकाल के सूर्य की किरणें पड़ रही हों।२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

मरकतमेचकगलललदाऽऽननगौरिमसुरुचिरभासम् ।
नालतलाऽऽगतमधुकरमण्डितपुण्डरीककृतहासम् ॥ ३
हरमिष्टतरं० ।

जिस महादेव ने गले पर पार्वती के गौर मुख को स्थापित किया हुआ है उससे उनकी और गले की शोभा अति सुन्दर हो रही है तथा उसके सामने मृणाल के नीचे के हिस्से से उड़कर आने वाले भौंरों से आवृत सफेद कमल की शोभा भी तुच्छ प्रतीत होती है।३

पञ्चाननधृतपञ्चदशेक्षणदशशयकिशलयवन्तम् ।
गिरिजाऽऽलोकनपरिरम्भणरसमित एव स्फुटयन्तम् ॥ ४
हरमिष्टतरं० ।

जिस महादेव ने अपने पाँच मुख बनाये हैं क्योंकि वे पंचानन कहलाते हैं अतएव उनके १५ आँखें हैं और १० हाथ हैं। इस रूप के द्वारा वे पार्वती के दर्शन और आलिंगन की उत्सुकता को स्पष्ट ही प्रकट कर रहे हैं।४

भालकलावदरालकलाङ्कचन्दनविन्दुलसन्तम् ।
दुग्धजलधिमिव शुक्तितलस्थितपृथुमुक्ताफलवन्तम् ॥ ५
हरमिष्टतरं० ।

जिस महादेव के मस्तक पर द्वितीया के चन्द्र की कला विराजित है और उसके ऊपर चन्दन बिन्दु लगा हुआ है वे महादेव ऐसे लगते हैं जैसे क्षीरसागर में पड़ी सीपी के मध्य में सफेद मोती हों। (शिव जी दुग्ध समुद्र हैं, चन्द्रकला शुक्ति है और चन्दन विन्दु मोती हैं) ।५

क्वचिदिच्छाविजनितनिजलोहितनीलवर्णमविकारम् ।
अम्बरमिव तेजस्तिमिरद्वयसङ्गरुचिरमपारम् ॥ ६
हरमिष्टतरं० ।

जिस महादेव का नाम नीललोहित है अर्थात् अपनी इच्छानुसार जो अपने शरीर में काला और लाल रंग वना सकते हैं, वे ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे स्वच्छ आकाश में सूर्य और अन्धकार का युद्ध हो रहा हो, वे उसी के समान सुन्दर शोभा वाले हैं।६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शितिपीताऽऽदिविविधवसनद्युतिमिश्रिततनुरुचिपूरम् ।
धातुशताऽचितसितपर्वतवरमिव तिष्ठन्तमदूरम् ॥ ७
हरमिष्टतरं० ।

काला, पीला इत्यादि रंगों वाले वस्त्र धारण करने से जिनकी शरीर की शोभा झिलमिल कर रही है और जो भिन्न-भिन्न प्रकार की गैरिक आदि धातुओं से युक्त निकटवर्ती सफेद पहाड़ के समान दिखाई पड़ते हैं।७

श्रीकविरामभणितमधुरहरमोहनरूपमदभ्रम् ।
कलिकल्मषपटलं विधुनोतु समीर इवाऽऽयतमभ्रम् ॥ ८
हरमिष्टतरं० ।

महाकवि रामजित् के द्वारा यह महादेव का महान् मोहक रूप वर्णित किया गया है। यह वर्णन, जैसे विशाल बादल को हवा उड़ा देती है, वैसे ही कलियुग के पापों को दूर करे।८

हर्षं ह्रदो हृदि निविश्य दृशा तदानीम्,
यः क्षोभितः पुरजिता गिरिराजपुत्र्या।
स्वेदश्च शीततरमश्रु च तत्तरङ्गः,
तच्छैवलं बहिरदृश्यत रोमहर्षः ॥ ६

जिस पार्वती ने महादेव के दर्शन से उत्पन्न हर्ष को हृदय में रोककर अपने नेत्र चन्द्र की कान्ति से जिस महादेव रूपी मानस सरोवर को क्षुब्ध कर दिया था उस महादेव रूपी सरोवर में आया हुआ पसीना और ठण्डे आँसू तरंग के रूप में हैं और उस सरोवर में ही शैवाल जाल रोमावली के समान ही बाहर दिखाई पड़ रहा था।६

११—गीत०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

स्मृतिं स्मारीं सारी पठति निखिलां या खलु मम,
प्रयात्युड्डीयेयं झटिति विघटत्पञ्जरतलात्[1]।
प्रगृह्णीमः सख्यो! द्रुततरमुपायात तदिमा-
मिति व्याजान्नीतो झटिति[2] जययाऽऽलीपरिजनः॥ ७

जो मैना मेरी काम-पीड़ा-कालीन सारी स्थिति को याद करके सुना देती है वह सारिका उड़ कर पिंजड़े से निकल कर जल्दी से जा रही है। हे सखियो! तुम जल्दी आओ और इसे हम पकड़ लें, यह कहकर जया नाम की पार्वती की सखी ने पार्वती के स्थान को एकान्तता प्रदान कर दी।७

मस्तन्यस्तत्रिदशतटिनीविन्दुवृन्दोपमाना-
स्तारा यस्मिन् नटति निपतन्त्युद्धताः स्रग्जटाग्रैः।
मन्दाऽऽक्रान्ताऽपि च धरणिरुत्कम्पते यत् पदाभ्याम्,
वाताघातात् तरिरिव हरः पातु स प्रीणयन् वः॥ ८

इति श्रीगीतगिरीशे निःशङ्कशङ्करदर्शनो
नाम एकादशः सर्गः॥ ११॥

जिस महादेव के मस्तक पर मन्दाकिनी में तारे एक बिन्दु के समान दिखाई पड़ते हैं जो कि तारे जटा में लटकी मालाओं के फूलों की तरह झड़ रहे हैं तथा जिस महादेव के चरणों के थोड़े-से आघात से पृथ्वी भी ऐसे हिलने लगती है जैसे वायु के झोंके से नौका। वे महादेव तुम्हें खुश करते हुए तुम्हारी रक्षा करें।८

इत्येकादशः सर्गः

---

१. पवनविघटात् पञ्जरमुखात् क०। २. झगिति क०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वादशः सर्गः

प्रवृत्तव्यावृत्तप्रकटितनिजाऽऽकूतनयनाम्,
पदं किञ्चित्किञ्चित् शयनदिशि यास्यद् विदधतीम्।
निदेशं काङ्क्षन्तीं चलहरकरक्षान्तचरिताम्,
विविक्ते व्यासक्तां पुररिपुरुवाच प्रियतमाम् ॥ १

जिस पार्वती के नेत्र महादेव को देखने के लिए उठे, फिर झपक गए किन्तु उन्होंने अपना भाव प्रकट कर दिया तथा शयन-गृह की ओर जिस पार्वती के पैर धीरे-धीरे बढ़ रहे थे जो महादेव की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही थी तथा हाथ के हिलाने से ही जिसके सब व्यापार रुक गये थे तथा जो एकान्त स्थान के लिए उत्सुक थी ऐसी पार्वती से शिव जी कहने लगे।१

देशाखरागेण गीयते

नखलघुविधुभिरपाकुरु मुखविधुभृत्यजनैरिव लम्बम्।
वदनाऽमृतकिरणाऽऽवरकालकतिमिरनिचयमविलम्बम् ॥ १
परिचर मामासादितपदयुगसरसिजमङ्गने ! ध्रुवपदम्

देशाखराग में गेय

शिव जी ने कहा हे प्रिये ! तुम अपने मुख-चन्द्रमा के नौकरों जैसे नख-रूपी छोटे-छोटे चन्द्रकला के अंशों से अपने मुखचन्द्र को ढकने वाली विशाल अलकावली रूपी अन्धकार-राशि को शीघ्र हटा दो।१

हे अंगने ! (सुन्दर अंग वाली !) तुम अपने चरण-कमलों को पकड़ने वाले मुझ व्यक्ति की परिचर्या करो।

मानिनि ! सकृपमलङ्कुरु चरणनलिनयुगलेन मदङ्कम्।
तत्परिचरतु चिरेण सुहृदमिव मम करकमलमशङ्कम् ॥ २
परिचर०।

हे मानिनि ! तुम मेरे उत्संग को अपने चरण-युगल से कृपापूर्वक भूषित करो, उन चरणों को अपना चिरवियुक्त मित्र मानकर मेरे करकमल निःशंक होकर दबाने लगें।२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

तव पदनलिनमिदं स्वशिरस्सु वहन्ति शयनकुसुमानि।
जलजनुषि स्फुटयन्तु कुसुमशतराज्यमसमसुषमानि॥ ३
परिचर०।

तुम्हारे चरण-कमलों को शय्या पर विछाये हुए फूल अपने मस्तक पर धारण किये हुए हैं। वे सुन्दर कान्ति वाले फूल यह सिद्ध कर रहे हैं कि प्रत्येक जल में उत्पन्न हुआ कमल सब जगह कुसुमशर (काम) का राज्य है।३

रतिपतिकेलिशैलकुचयुगले मृगमदपत्रककुञ्जम्।
मम नखचन्द्रचन्द्रिका चतुरा तनुतामतिमिरपुञ्जम्॥ ४
परिचर०।

हे भामिनि! तुम्हारे काम के क्रीड़ा-शैल तुल्य स्तन-युग पर जो कस्तूरी का वनाया हुआ पत्रककुंज है उसके अन्धकार को मेरी चतुर नखचन्द्र की चन्द्रिका दूर कर दे।४

वितनु च वदनकुमुदमुदमुदयद्दयहृदये! मम सविकाशम्।
तव दशनद्युतिकौमुदिकाभिरुदञ्चय वचनविलासम्॥ ५
परिचर०।

हे सदय हृदय वाली, मेरे मुख-कुमुद को विकसित करके प्रसन्न करो तथा अपनी दन्त चन्द्रिका के साथ अपनी वाणी के विलास को भी प्रकट करो।५

मम गलरुचियमुना तव मणिसरसुरसरिदिह प्रयागे।
मयि वितर स्तनकनककलशकौ पिककृतकुहूविभागे॥ ६
परिचर०।

हे कोयल के जैसी कुहु ध्वनि करने वाली (यह रति भणित की ध्वनि का संकेत है) तुम अपने वक्षःस्थल पर लटकने वाली मणिमाला रूप गंगा से मेरे गले की कान्ति रूप यमुना को मिला दो, इस प्रकार मेरे प्रयाग रूप वनने पर उस तीर्थस्थल को पार करने के लिए मुझे अपने स्तन रूपी स्वर्णकलश प्रदान करो।६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चलदलदलजित्वरतरमङ्गमुपायनमुपनय महृयम्।
मृदुनिधुवनमधुना विदधे मम साहसमिदमिह सहृयम् ॥ ७
परिचर०।

हे सुन्दरि! तुम पीपल के पत्तों को फड़कने में जीतने वाले अपने अंग-विशेष (भग) को उपायन के रूप में या भेंट में मुझे प्रदान कर दो जिससे मैं तुम्हारे साथ मृदु रूप में अब निधुवन (रतिक्रीड़ा) करने का साहस कर सकूँ। यह तुम्हें सहन करना ही चाहिए।७

श्रीकविरामरचितमुचितमिदमन्धकरिपुरतिरम्यम् ।
गायत चित्ररथप्रभृतिभिरपि चतुरतरैरभिनम्यम् ॥ ८
परिचर०।

महाकवि रामजित् के द्वारा रचित इस शिव की लीला रति से सुन्दर गीति-काव्य को जिसे चतुर चित्ररथ आदि गन्धर्व भी गान के सौन्दर्य से हाथ जोड़ते हैं, ऐसे काव्य को सब गान-विद्या-निपुण गायें। ८

वक्षःपक्षमभिक्षताऽग्रनखरैर्दन्दश्यमानाऽधरा,
हस्तस्वस्तिकवामनीकृतकुचा सञ्जुक्वणन्मेखला।
दोर्नद्धालुलिताऽलकाऽऽननंननेत्यव्यक्तमुक्ताऽक्षरम्,
जल्पन्ती गिरिजा रराज सुरताऽऽरम्भेति कुम्भस्तनी ॥ २

भगवती पार्वती सुरत के आरम्भ में कुम्भातिशायी स्तन वाली तथा जिसके वक्षःस्थल के दोनों पथ चारों ओर से नखप्रहार से क्षत-विक्षत थे, जो अधरक्षत वाली थी तथा स्वस्तिकाकार हाथों से जिसके स्तनों को झुका दिया गया था, जिसकी मेखला मंजुल ध्वनि कर रही थी तथा जिसने अपने खुले बालों को हाथों से पकड़ रखा था और जिसके मुख से न न यह अव्यक्त अक्षर निकल रहा थी, ऐसी पार्वती बड़ी ही शोभायमान हो रही थी।२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रखरनखराऽऽघातं पातं घनस्तनमण्डले,
चिकुरनिकराकर्षं दंशं रदैरधरेऽदयम्।
निजविजयिनो दर्शं दर्शं प्रहृष्यत् हृच्छयः,
स्वयमपि हरः प्रीतं प्रापन्महत्तदिहाऽद्भुततरम्॥ ३

कामदेव अपने हराने वाले महादेव की यह दशा देखकर खुश हुआ कि वह कभी नखाघात करता था, कभी पार्वती के स्तन-मण्डलों पर गिरता था, कभी पार्वती के बाल खींचता था, कभी अधर-दंशन निर्दयता से करता था, किन्तु साथ ही महादेव भी खुश हुए यह बड़े आश्चर्य की बात हुई (विजयी पराजित होने पर भी खुश हो रहा था, यही आश्चर्य है)।३

विलुलितकवरी गलत्प्रसूना,
मृदुकरपल्लवकम्पिनी व्यभात्सा।
हरतनुमनुवेष्ट्य संस्थिता,
तरुमिव कल्पलता सुपुष्पिताग्रा॥ ४

जिस प्रकार पुष्पित कल्पलता वृक्ष को आवेष्टित कर लेती है उसी प्रकार शिव के शरीर को जकड़ कर बैठी वह शिथिल केशपाश वाली, केशों से फूल गिराने वाली निषेधार्थक कर-पल्लव को हिलाने वाली पार्वती शोभायमान हो रही थी।४

इह रतिविपरीतसङ्गरे यज्ज-
यमगमद् गिरिजा तदत्र योग्यम्।
समकृतकवरी प्रसूनवर्षं
मणिरशना जयदुन्दुभिप्रणादम्॥ ५

इस विपरीत रतियुद्ध में जो कि पार्वती ने विजय प्राप्त की तदर्थ ठीक ही उसके केशपाशों ने फूल वर्षा की और उसकी मणि मेखला ने विजय-दुंदुभि बजाई।५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनोबन्धन्तस्य व्यतनुत विबन्धाऽपि कवरी,
विरागो रागञ्च व्यदिशदधरः सीधुमधुरः।
त्रुटन् हारो[1] हार्द्दं वरदहृदि जग्रन्थ तद्दिम्,
प्रिया प्रीत्या प्रार्तनिखिलमपि सौख्याय समभूत्॥ ६

प्रातःकाल महादेव के लिए पार्वती रूप प्रिया में प्रीति होने से पार्वती के सारे कार्य शिव को सुख देने वाले हो रहे थे—तथा हि—खुली कवरी (केशपाश) में महादेव के हृदय को बाँध लिया और मद्यपान से मधुर पार्वती के लालिमा रहित अधर ने शिव को राग प्रदान किया, टूटते हुए हार ने महादेव के हृदय में प्रेम को गूँथ दिया या बाँध दिया, यह सब देख कर शिव प्रसन्न हुए।६

लुप्तः पत्रविशेषकः श्रुतिरपि त्यक्ताऽवतंसाऽथ दृक्-
व्यालोला च्युतचन्दनं स्तनयुगं म्लानाः प्रसूनस्रजः।
शय्याऽऽशीर्णसुवर्णबिन्दुनिचिता सर्वं शिवेनेक्षितम्,
रागन्तस्य नवन्नवञ्च मदनं भूयः समौद्वेलयत्[2]॥ ७

पार्वती के पत्र विशेषकों ने लोप प्राप्त कर लिया अर्थात् वे मिट गये, पार्वती के कान भी आभूषणरहित हो गये, नेत्र चंचल हो गये, स्तनों पर से चन्दन हट गया, फूल की मालाएँ कुम्हला गयीं, शय्या पर नुचे हुए फूल व्याप्त थे, यह सब कुछ शिव जी ने देखा जिससे कामदेव ने महादेव के हृदय में नया राग उत्पन्न कर दिया कि उसके नवीन-नवीन राग की ओर कामवासना को फिर बढ़ा दिया।७

रताऽन्ततान्तिमत्तनुर्नितान्तकान्तचेष्टिता।
उवाच वाचमम्बिका निकामकामदं हरम्॥ ८

इस प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति करने वाले महादेव से रतिक्रीड़ा के वाद जिसका शरीर विश्रान्त हो गया है तथा जिसकी चेष्टाएँ वड़ी सुन्दर हैं ऐसी पार्वती शिव से बोली।८

---

१. हारैः क०। २. समुदवेलयत् इत्युचितः पाठः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

रामगिरिरागेण गीयते

नववदने वदनं हृदयङ्गम! मम मधुराऽधरबन्धुरे।
शशिसरसीरुहयोरिव सौहृदमघटितमपि घटयान्तरे॥ १
गिरिजाऽऽह गिरमिति शङ्करे विहरति निजजनशङ्करे॥ ध्रुवपदम्

रामगिरि राग में गेय

हे हृदयंगम! (शिव) मेरे मधुर अधर से सुन्दर मुख पर अपना मुख रखो तथा इस प्रकार चन्द्रमा और कमल की न हुई मैत्री स्थापित करो (यहाँ पार्वती का मुख चन्द्रमा है और शिव का मुख कमल रूप है) १

इस प्रकार पार्वती ने अपने भक्तों के कल्याणकारी शंकर जब विहार करने लगे तब उनसे कहा।

जिततिमिरे रुचिरे कवरेऽम्बर इव विरलाऽम्बुदवृन्दके।
उडुसुषमानि सुमानि समर्पय मधुकरकुलरुचिनिन्दके॥ २
गिरिजा०।

अन्धकार को जीतने वाले, सुन्दर, काले घने भौंरों की निन्दा करने वाले मेरे कवर भार में तारावृन्द के समान सफेद फूलों को लगा दो, वे ऐसे लगेंगे जैसे विरल जलद वाला आकाश हो।२

मृगमदपत्रविशेषकलेखमखेदमुपाऽऽलिख मन्मुखे।
सरसि सुधासलिले शिव! शैवलमञ्जरिकामिव सन्मुखे॥ ३
गिरिजा०।

हे शिव! तुम मेरे मुख पर कस्तूरी के द्वारा मत्तक और विशेषक बनाओ। जिस प्रकार अमृत जल से पूर्ण तालाब में उभरी हुई शैवल लता हो वैसे ही वे शोभित हों।३

कुण्डलमण्डलविधुमधुनेह बधान दृढ़श्रुतिपाशके।
वदनतुलाधृतिमन्तुमन्तु[1] मपराधसदृशमधिशासके[2]॥ ४
गिरिजा०।

हे शिव! तुम मेरे कानों में गोल-गोल चन्द्रमा जैसे कुण्डलों को लगा दो जो कि मेरे श्रोत्ररूपी शासक उस मेरे मुख के सादृश्य करने के अपराध के अपराधी चन्द्रमा को दण्ड देने वाले बनें।४

---

१. अन्तम् क०। २. अनुशासके ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्तनगिरिनिर्झरसुन्दरहारसुचारिमधारिणि हृत्तले।
मम मकरञ्च कराङ्गुलिकोमलदलचलनेन लिखाऽमले ॥ ५
गिरिजा०।

हे शिव ! तुम मेरे स्वच्छ वक्षःस्थल पर जहाँ पर लटकता हार ऐसा लगता है जैसे स्तम्भ रूपी पहाड़ पर कोई झरना वह रहा हो, वहाँ अपनी कोमल कर-शाखाओं से मकराकृति को चित्रित करो।५

कुरु मम यावकरविकरसङ्करमङ्कतले विनिवेशिते।
पदकमले विमले युगलेक्षणमणिहंसकयुगसेविते ॥ ६
गिरिजा०।

हे शिव ! तुम मेरे स्वच्छ पैरों में जहाँ दो मणि वाले दो-दो विछुए शोभित हो रहे हैं और वे मणियाँ पैरों की आँख-सी दिखाई पड़ती हैं तथा जो तुमने अपनी गोद में रख लिये हैं उन पर लाक्षारस से लालित्यपूर्ण लालिमा अंकित करो।६

इदमनुकूलदुकूलवितानकमातनु मदननिकेतने।
तव सघने जघने मम मणिमयरशने विविधरुचिकेतने ॥ ७
गिरिजा०।

हे शिव ! तुम मेरे और अपने विविध इच्छाओं के निकेतन और मणियुक्त मेखला वाले अपने घन जघन पर तथा मेरे मदन निकेतन (भग) पर अनुकूल दुकूल का वितान तान दो।७

श्रीकविरामरचितवचनाऽमृतसरसि निमज्ज जनाऽऽयते।
यदि रुचिरस्ति पुरारिपदाऽम्बुजमधुपटले सुचिराय ते ॥ ८
गिरिजा०।

हे मनुष्यो ! तुम महाकवि राम के द्वारा विरचित वचनामृत सरोवर में जो कि बड़ा विशाल है वहाँ डुबकी लगाओ, यदि आप लोगों को भगवान् शिव के सुन्दर चरण-कमलों में दीर्घकालिक भक्ति है।८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तिलकमलिके मुक्ताहारं गलेऽपि निधेहि मे,
मधुरमधरन्धीराऽऽधायाऽऽनने रमयस्व माम्।
रचय चरणे मञ्जीरं मञ्ज्वथाऽर्पय मत्कटौ,
पुरटरशनामि[1]त्युक्तः श्रीहरोऽपि तथाऽकरोत्॥ ९

हे शिव! तुम मेरे मस्तक पर तिलक लगा दो तथा गले में मोती का हार पहना दो तथा हे वीर! तुम अपने मधुर अधर को मेरे मुख पर रख कर मेरे साथ रमण करो। मेरे पैरों में विछुवे पहना दो जो कि बिछुए सुन्दर हैं तथा सोने की मेखला को मेरे कटिभाग में पहना दो,इस प्रकार पार्वती के प्रार्थना करने पर महादेव ने भी वैसा ही करना स्वीकार किया।९

या वाचामुचितार्थसङ्गतिभृतां भङ्गिर्य ओजःप्रसा-
दाद्याः काव्यगुणा यदन्धकरिपुध्यानावधानाऽऽदिकम्।
भारत्या भरतस्य यच्च मथितन्तद् रामनाम्नः कवे-
र्विद्वांसः कलयन्तु गीतगिरिशाच्छ्रीकण्ठपादार्ऽपितात्॥ १०

जो शब्दार्थ की संगति वाली वाणी की रचना का वैशिष्ट्य है तथा जो माधुर्य, ओज, प्रसाद आदि काव्य गुण हैं, इनके साथ जो भक्त द्वारा भगवान् शिव के आराधन और ध्यान में एकाग्रता है, एवं भगवती सरस्वती देवी का और भरत के नाट्यशास्त्र का अर्थात् संगीतशास्त्र का सारभूत रहस्य है; ये सम्पूर्ण तत्त्व रामजित् कवि के द्वारा निर्मित इस भगवान् अन्धकरिपु महादेव के चरण-कमलों में अर्पित गीतगिरीश के द्वारा विद्वद्गण आस्वादित करें।१०

---

१. स्वर्णरशनामित्यर्थः, यथा भागवते—अङ्गुष्ठममलं स्फुरत्पुरटमौलिनम्। १।१२।८।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मधु! विधुतमसि त्वं खण्ड! ते[1]खण्डता स्तात्,
सरक! नरकमेव त्वं त्वमिक्षो! क्षुरोऽसि।
अमृतमनृतमेवाम्र! म्रियस्वाधर त्वम्,
न हि[2] किमधर इमा यद्रामवाचो जयन्ति॥ ११

मुझ रामकवि के द्वारा निर्मित इस गीतगिरीश खण्ड काव्य की तुलना में शहद का माधुर्य अकिंचित्कर है। खाँड़! तू भी इसके सामने खण्डित है। हे सरक! (अर्थात् मिश्री या हे राब!) तू इसकी मिठास के सामने नरक है। हे इक्षु-दण्ड! तेरी मिठास भी जीभ को काटती है। हे अमृत! तुम्हारा नाम भी झूठा है। हे आम! तेरी मिठास इसके सामने इतनी तुच्छ है कि तू लज्जा से मर जा। हे अधरो! तुम्हारा मधुरास्वाद भी इसके समक्ष तुच्छ है।११

आसीदसीममहिमा [3]स हिमाऽवदात-
मूर्तेर्भवस्य चरणाऽर्चनयाऽऽप्तकीर्तिः।
श्रीनाथभट्ट इति तत्तनयेन राम-
नाम्नाऽद्भुतं व्यरचि गीतगिरीशमेतत्॥ १२

इति श्रीगीतगिरीशे[4] सुप्रीतपार्वतीपति-
र्नाम द्वादशः सर्गः ॥२॥

जिस चन्द्रमा के समान शुभ्र भगवान् शंकर की पूजा करके जिसने संसार को अपने कीर्ति-प्रतान से आच्छादित कर दिया है, ऐसे महान् निस्सीम महिमा वाले श्री पूज्य श्रीनाथ भट्ट नाम के व्यक्ति जगत्प्रसिद्ध हुए हैं, उनके पुत्र श्री रामजित् कवि ने इस अद्भुत रस वाले गीतगिरीश का निर्माण किया है।१२

इति गीतगिरीशे द्वादशः सर्गः

●

---

१. खण्डने खण्डना स्तात् क०।
२. मूलहस्तलिखितपुस्तकद्वयेऽपि 'न हिं' पाठो वर्तते, येन वृत्तभङ्गो भवति।
३. 'म' क०। ४. महाकाव्ये इत्यधिकं पदम् ख०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

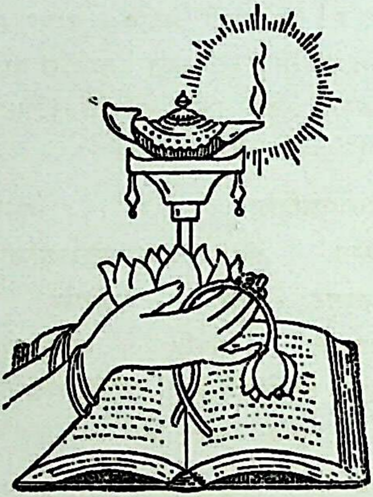

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकानुक्रमणिका

अ	पृष्ठ संख्या
अङ्गं स्वक्ष्यति	७६
अतिस्तोकाऽऽलोका	७२
अथ कथमपि	२५
अथ शुभसमयें	४६
अनुकलमनुरागन्तस्य	५८
अनुनीय पुरारातौ	७४
आ	
आकृष्टन्न निवर्तते	१६
आशाभिर्गिरिशस्य	४१
आसीदसीममहिमा	९१
आस्यै: पञ्चभिराचुचुम्ब	४
इ	
इह रतिविपरीतसङ्गरे	८६
उ	
उदयन्तं विधुं	४६
उत्कीर्य स्वदृशन्नखेन सहसा	६७
उत्थायोत्थाय	४५
उद्धूता वनमरुता	१०
उमानासानाली	२३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क

कर्पूरपूगगौरी २

कर्षन्तावितरेतरस्य १

कामे कोपे ६४

किं गोत्रस्खलिते ५३

किं स्त्रीयन्ते ४४

कुञ्जे कुञ्जे ३९

ग

गल्लं गल्लगकज्जलञ्च ६२

गौरीदृशस्तव २४

च

चकोराः ७२

चक्षुस्तुष्यति हृष्यसि ७३

ज

जायास्तां १३

त

तमः पुञ्जे कुञ्जे सुरभि ४३

तान्दृष्टि २३

तिलकमलिके ९०

त्रुटिः २९

त्वन्मोहेन विवर्द्धते ३६

त्वन्मौनं ७०

द

दहतु दहतु ४०

दारुकान्तारसत्कुञ्जे ३२

Dr. Urmila Sharma Collection , Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

दीर्घस्य श्वसितस्य	५०
दृप्यद्दर्पककेलि	१३
देवोनामरविन्द	१६
ध	
धम्मिलच्युतमल्लिकं	७३
न	
निवघ्नन् मुञ्चंश्च	७
निर्यान्ती भवनाद्	२७
नूतना पूतनेवेयन्दिगैन्द्री	४९
प	
परावृत्या प्रमुञ्चन्ती	१४
पलाशं चापं ज्या	४७
पद्मैर्यत्र इवान्तरे	७१
पान्थानान्दहति	१०
पापं वः प्रदहन्तु	५९
पाशौ ते श्रवणा	२२
प्रखरनखराऽऽघातं	८६
प्रणयकलहकाले	४८
प्रवृत्तव्यावृत्तप्रकटित	८३
प्रसूनैरनूनैरशोको	१९
फ	
फुल्लाऽशोक	५३
भ	
भवानी सेह	३३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भालचन्द्रहतध्वान्ते ७६

म

मन्दरे कन्दरं ४०
मन्दाऽऽन्दोलित १०
मणिहारः फणिहारः ३३
मणीमाला ज्वाला २३
मदनानन्दसन्दोह ६८
मद्भालेन्दुकरैः १९
मधु! विधुतमसि ९१
मनोबन्धन्तस्य ८६
मस्तन्यस्त ८२

य

यत्कर्णं पिदधास्यमुष्य ६६
यदत्रच्छत्रं २९
यद्वाचोऽमृतमञ्जुलाः ३६
याति स्विद्यति २८
या वाचामुचितार्थसङ्गतिभृतां ९१

र

रताऽन्तताऽन्तिमत्त ८७

ल

लास्यन्नाकनतभ्रुवां १९
लुप्तः पत्रविशेषकः ८७
लोकान् धारयते ७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व

वन्ध्ये वेधसि ६३
वक्षःपक्षमभिक्षता ८५
वदननयनकरचरणं ७१
वनात्कुञ्जं कुञ्जाद् ४८
वहति दहनं ३९
विटपि विटपानारुज्याऽयं २९
विलुलितकवरी ८६
विविधैर्विबुध १०
विषधरगरला ७
विहरति शितिकण्ठे २०
वैतानाऽग्निरसौ ५२

श

शङ्के शङ्कर ! ४७
श्यामा त्वं वयसा ७१
शिवो वक्षोजस्ते ७२
श्रुत्वाऽपि रुचिरा ३३

स

संग्रामे ३०
सखीन्नतमुखी वीक्ष्य ५३
सा मन्दाक्षेण ७९
सुधा त्वदधरासवस्तव २२
स्खलन्तं क्षीववत् ६०
स्मरसंज्वरखिन्नया ५०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्मृतिं स्मारीं सारी ८१
स्मृत्याऽङ्कुरितो ४०
स्मृत्या तवान्तरमपूरि ७८

ह

हरमुखप्रतिमोऽपि ५५
हरविरहिणीन्दुःखाकर्त्तुं २८
हर्यक्षं कपिरनुवर्तते २
हर्षं श्रीहर्षनामा १
हर्षं हृदो हृदि ८१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गीत-सूची

ऊ	पृष्ठ संख्या
ऊरुद्वयजितरम्भा	११
क	
कल्पलतिकातति	७७
कलयति रुचिरुचिरं	४५
कुसुमशरज्वर	५४
कृपयति पुररिपु	६४
केवलकररय	१४
क्ष	
क्षपयसि	५
क्षिपति स	४१
ग	
गजवरवदनविभूषित	२
च	
चरणशरण	७४
ज	
जर्ज्जरीकृतनिर्ज्जरी	२०
जागर गरिमजनित	६०
त	
त्रिनयननयनपथं	१७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

द

दलय कलस्वर ३४

न

नखलघुविधुभिरपाकुरु ८३

नन्दापुलिने ३७

नववदने वदनं ८७

प

परभृतरुतमति २५

म

मत्तमधुकेसरि ५०

मम मनोऽसि प्रिये ! ६८

र

रागतरङ्गित ७९

व

वहसि शिरसि सुभगे ४

श

शिशिरतरं ३१

स

सरससालकुसुम ८

सुरसरिदलिके ५६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृत की शास्त्रीय परम्पराओं में आवद्ध काव्य के कथ्य और शिल्प पर भारतीय नवजागरण के प्रभावस्वरूप संस्कृत-काव्य में भी युगान्तर के स्वर का उद्घोष। शोषित, पीड़ित और परतन्त्र राष्ट्र की कराह को अपनी विशिष्ट भंगिमा के साथ अभिव्यक्त करनेवाले विशिष्ट कवि हिन्दी की शीर्ष पत्रिका 'विशाल भारत' के अक्टूबर, १९४१ शीर्षक के अंक में 'संस्कृत के प्रगतिशील कवि—प्रभात' लेख में प्रकाशित प्रकृतिपरक ललित गीतियों के साथ क्रान्ति-स्फुल्लिंगों से उद्दीप्त रचनाओं के रचयिता के रूप में आपके कवि-व्यक्तित्व का समाकलन। 'सूर्योदय', 'सुप्रभातम्', 'ज्योतिष्मती', 'संस्कृतम्', 'अमरभारती' तथा 'भारत श्री' आदि पत्रिकाओं में संस्कृत-कविताएँ, कहानियाँ एवं लेख प्रकाशित। बनारस से स्वर्गीय पण्डित श्री काली-प्रसाद शास्त्री के सम्पादकत्व में प्रकाशित 'अमरभारती' पत्रिका में मुद्रित आपकी 'अहम्' शीर्षक कविता के कारण पत्रिका जब्त।

श्री विश्वनाथ सिंह जू देव विरचित 'अध्यात्मरामायणम्' की व्यंग्यप्रकाशिका टीका के सम्पादन एवं उसकी जटिल गुत्थियों का विस्तृत भूमिका में रहस्योद्घाटन।

सम्पादित गीत-काव्य—गीतगिरीशम्, रामगीत-गोविन्दम्, संगीतरघुनन्दनम्, गीतपीतवसनम्, कृष्णगीतम्, गीतगौरीपति, पार्वतीगीतम्, गीतगंगाधर तथा भागवत-गीतम् (अप्रकाशित)। **प्रणय-काव्य**—चिमनीचरितम्। **खण्ड-काव्य**—प्रतापविजयम्। **नाट्यसाहित्य**—चन्द्रकला-नाटिका, छत्रपतिसाम्राज्यम्, प्रतापविजयम्, भाणद्वयम्, समुद्रमथनम्, भगवदज्जुकम्। **काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ**—चमत्कारचन्द्रिका, रसप्रदीप। **अन्य संस्कृत कृतियाँ**—रामगीता (दर्शन), लिंगानुशासनम्, लिंगविशेषविधिः (व्याकरण), भारतशतकम् (काव्य-संग्रह), संस्कृतसुषमा, संस्कृतसाहित्यसरणि। 'संस्कृत कवयित्रियों का संग्रह' तथा सुभाषित ग्रन्थों में प्रशंसित कवियों के श्लोकों का संग्रह तथा अन्य कृतियाँ अप्रकाशित।

⊙

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi